# यौगिक-व्यायाम-पद्धति

( पूर्ण-आसन-विधि )

लेखक
प्रकाश देव
Prakash Dev
संस्थापक तथा सञ्चालक,
योग-आश्रम, लाहौर ।

———

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

( शारीरिक स्वास्थ्य ही धर्म का मुख्य साधन है )

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः

( धर्म वह है कि जिस से सब प्रकार की उन्नति तथा
आनन्द और शान्ति की प्राप्ति हो )

आचारः परमो धर्मः

( आचार सब से उत्तम धर्म है )

जुलाई, १९४१

1941

प्रथम आवृत्ति

मूल्य रु० ३

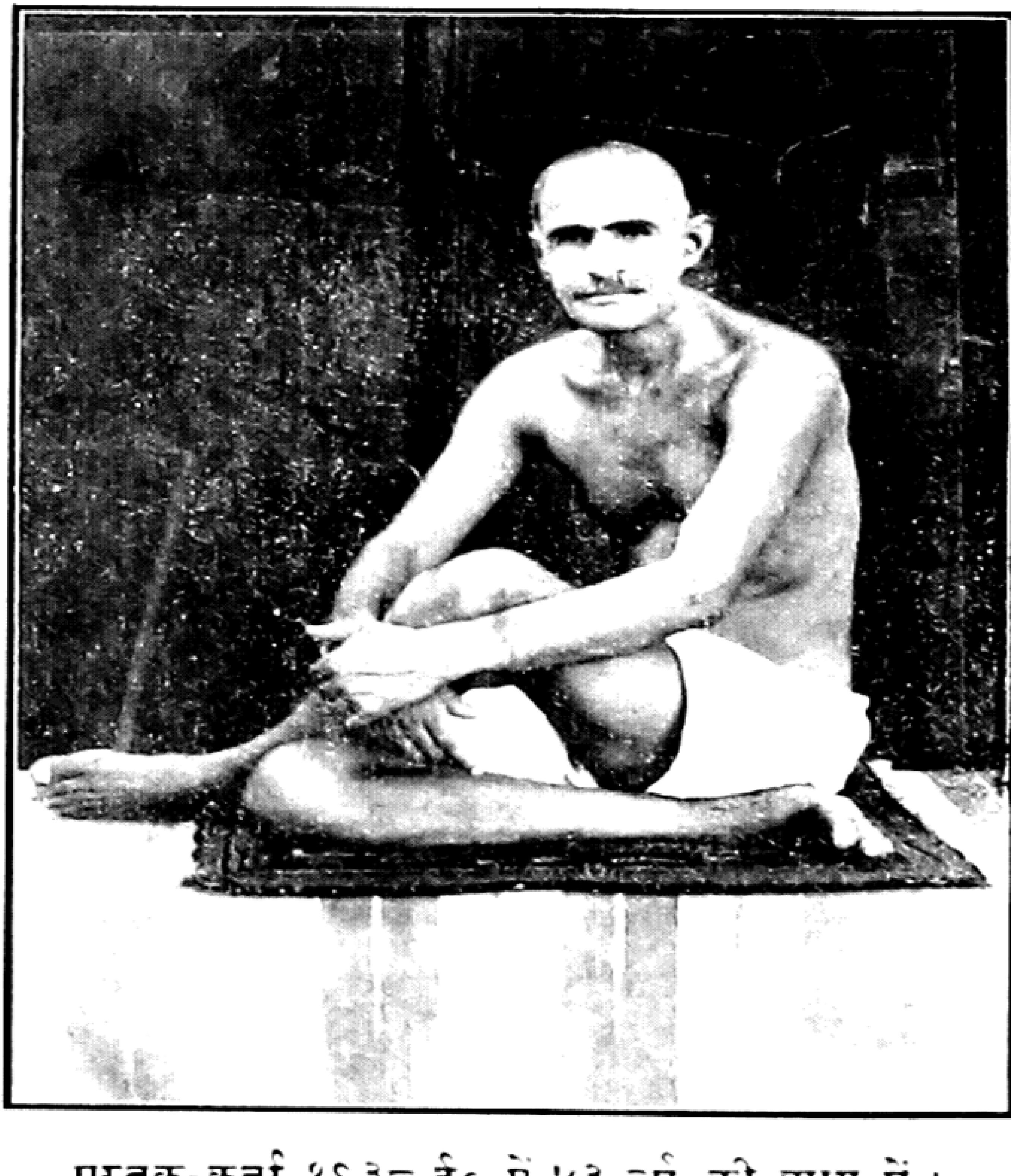
10570

Printed at the Lahore Art Press, 16, Anarkali, Lahore,
by Ram Bheja Kapur Printer, and Published
by Pt. Prakash Dev of the Yoga Ashram,
6, Lower Mall, LAHORE.



पुस्तक-कर्ता १९३२ ई० में ४७ वर्ष की आयु में।

The author at the age of 47 in 1932.



पुस्तक-कर्ता १९३८ ई० में ५३ वर्ष की आयु में।
( १३ वर्ष के अभ्यास के पश्चात् )
The author at the age of 53 in 1938.
(After practising the system for 13 years).

समर्पण—

वास्त्विक स्वास्थ्य, शक्ति
तथा आनन्द
के
अभिलाषी जनों की सेवा में

निम्न-लिखित महानुभाव आश्रम को उदारचित्त से धन देते हुये इस शुभ कार्य को बढ़ाने में विशेष सहायता कर रहे हैं :—

## संरक्षक (Patron)

आनरेबल रा० ब० रामसरन दास जी, सी० आई० इ०, एम० सी० एस०, जिनहों ने १५०० रु० दान देने के अतिरिक्त अपने खर्चे पर " Yog for Health Happiness and Peace " नामक पुस्तक की ४००० प्रतियां मुफ़्त बांटने के लिये छपवाई ।

## सहायक (Sympathiers)

१. ला० देवी दास जी ( चीफ जज )

२. रा० सा० बालकृष्णा कपूर
(Executive Engineer Irrigation Dept.)

३. पं० ठाकुर दत्त जी, अमृतधारा ।

४. श्रीयुत गोपी नाथ जी, बी० ए०, रईस, लुधियाना ।

# विषय सूची

# शुद्धि पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १२ | ६ | सम | समय |
| १५ | २ | किधि | विधि |
| ,, | १० | दोनां | दोनों |
| ,, | १२ | प्रैसे | वैसे |
| १६ | ५ | सय | समय |
| १७ | १५ | माग | भाम |
| २० | १३ | विहिष्करण | वहिष्करण |
| ,, | २१ | षदार्थ | पदार्थ |
| २१ | २ | आन्द | आनन्द |
| २१ | १७ | कक | कम |
| २६ | १ | जाह्न | जाह्न |
| ४६ | १७ | पर | पर |
| ६६ | १ | सहिन | सहित |

नोट—चक्रासन की संख्या ७ के स्थान में ८ समझो और तदानुसार शेष आसनों में भी परिवर्तन करो।

# यौगिक-व्यायाम-पद्धति

## (Yogic system of Exercise)

योगिक व्यायाम-पद्धति में आसन तथा प्राणायाम, दोनों सम्मिलित हैं, एक के बिना दूसरे का अभ्यास इसी प्रकार निरर्थक है, जैसे आत्मा के बिना शरीर, और शरीर के बिना आत्मा, किन्तु योग-शास्त्र के क्रमानुसार पहिले आसन का वर्णन किया जाता है।

## आसन का लक्षण

### (Definition of yogic pose)

महर्षि पतञ्जलि आसन का लक्षण करते हुये लिखते हैं :—

"स्थिरसुखमासनम्" ॥२-४५॥

अर्थ—"जिस के द्वारा शारीरिक तथा मानसिक स्थिरता और अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है, इस प्रकार भिन्न २ अङ्गों को गति देते हुए विशेष प्रकार के शारीरिक आकार को धारण करना आसन कहलाता है।"

इस सूत्र का अर्थ, जैसा कि लोग प्रायः समझते हैं, यह नहीं है, कि 'जिस में किसी प्रकार की गति न हो, और जिस के करने में सुगमता हो, उस का नाम आसन है।'

स्थिर-सुख शब्द का अर्थ गतिहीनता व सुगमता नहीं, प्रत्युत इस प्रकार की गति, जिसमें विना किसी प्रकार के क्षोभ के धीरे २ उपयोगी चेष्टा करते हुये शरीर को किसी ऐसी विशेष प्रकार की निश्चल अवस्था में इतने समय तक स्थित किया जाये, जिस का परिणाम अक्षय आनन्द का लाभ हो, तो वह शारीरिक स्थिति की अवस्था **आसन** कही जाती है, किन्तु यदि 'स्थिर' शब्द को 'सुख' शब्द का विशेषण समझा जाये, तो इस सूत्र के केवल यह अर्थ हो सकते हैं, "जिस प्रकार की शारीरिक स्थिति में स्थायि आनन्द की प्राप्ति हो, उस को आसन कहते हैं, आसन शब्द का अर्थ किसी विशेष अवस्था में स्थित होना है ।

इस में सन्देह नहीं कि **'योगदर्शन'** में महर्षि **पतञ्जलि** ने भिन्न २ प्रकार के आसनों का वर्णन नहीं किया, किन्तु इस से यह सिद्ध नहीं होता, कि वह इस प्रकार के आसन करने के पक्ष में नहीं हैं, हो सकता है, कि उन के समय में आसन इतने प्रचलित हों, कि उन को इन के विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता ही प्रतीत न हुई हो, या आसनों की पद्धति ने इस प्रकार उन्नति न की हो, जैसा कि **हठयोग-प्रदीपिका** इत्यादि के काल में, किन्तु महर्षि व्यास उक्त सूत्र पर भाष्य करते हुये कई प्रकार के आसनों के नाम कथन करते हैं, और इस भाष्य पर **वाचस्पति मिश्र** की टीका में उन आसनों की विधि बताई गई है, इन में से कुछ ऐसे भी आसन हैं, जिन का वर्णन दूसरी

योग की पुस्तकों में नहीं मिलता, जिस से प्रतीत होता है, कि महर्षि व्यास के समय में भी भिन्न २ प्रकार के आसन प्रचलित थे।

## आसन-सिद्धि (Mastery over Yogic posture)

आसन का लक्षण करने के पश्चात् महर्षि पतञ्जलि दूसरे सूत्र में इस की सिद्धि के लिये साधनों का वर्णन इस प्रकार करते हैं :—

"प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्" ॥२-४७॥

व्याख्या—"जब आसन का अभ्यास करते २ मनुष्य इस प्रकार की अवस्था को प्राप्त कर ले, कि आसन करने में शरीर को किसी प्रकार का कष्ट तथा क्षोभ प्रतीत न हो अथवा अन्तः-करण में किसी प्रकार का विक्षेप न होने से मन एकाग्र तथा आत्मा विश्व-व्यापी अनन्तशक्ति में तन्मय हो जाये तो आसन सिद्ध होता है।'

### आसन सिद्धि का फल

तत्पश्चात् निम्नलिखित सूत्र में आसन की सिद्धि के फल को बताते हैं : —

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥२।४८॥

अर्थ—"आसन के सिद्ध हो जाने पर मनुष्य को शीत उष्णता, सुख दुःख, इत्यादि द्वन्द्व प्रभावित नहीं कर सकते।"

हठयोग-प्रदीपिका में लिखा है।

"हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते ।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम् ॥१।१७॥

अर्थ—हठयोग का प्रथम अङ्ग होने के कारण आसन को पहिले कथन किया जाता है, इसलिये मनुष्य अभ्यास द्वारा पहिले आसन को स्थिर करे, इसके स्थिर होने पर शारीरिक तथा मानसिक रोगों की निवृत्ति होती है, और शरीर में लघुता आने से मनुष्य अपने में फुरती तथा हलकापन प्रतीत करता है ।

## आसनों के प्रकार

योग-शास्त्र की दृष्टि से केवल पद्म-आसन या सिद्ध-आसन के समान किसी विशेष प्रकार की अवस्था में स्थित होने का नाम ही आसन नहीं, प्रत्युत कोई भी प्राणी किसी प्रकार की उठने बैठने इत्यादि की शारीरिक अवस्था में क्यों न हो, वह आसन कहलाता है, किन्तु कौन से आसन मनुष्य के शारीरिक तथा आत्मिक विकाश के लिये परम-उपयोगी हैं, इस बात को सन्मुख रखते हुए प्राचीन योग-आचार्यों ने अपने अनुभव द्वारा विशेष प्रकार के आसनों का संग्रह कर के मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये योग-शास्त्र की रचना की ।

शिव-संहिता में वर्णन है, कि जितनी जीवों की जातियां हैं, उतने प्रकार के आसन हैं, जिन की ८४ लक्ष गणना की गई है, उन में से विशेष आसन ८४ हैं, और मनुष्य के लिये जो

उपयोगी बताये गये हैं वह ३२ आसन, १५ मुद्रा और ५ बन्ध हैं, जिनका घेरण्ड-संहिता में वर्णन किया गया है, किन्तु मैंने इस पुस्तक में केवल १४ आसन, १ बंध, २ मुद्रा और नौली, इन १८ का उल्लेख किया है, नौली, बन्ध तथा मुद्रा भी एक प्रकार के आसन ही हैं।

## आसन करने का स्थान

आसनों का अभ्यास करने के लिये खुली वायु तथा प्रकाश की आवश्यकता है, ग्रीष्म में शीतल छाया, और शीत में खुली धूप में अभ्यास करने से ही पूर्ण लाभ हो सकता है, वर्षा काल में ऐसे छते हुए स्थान में प्रयोग किया जाये, जो चारों ओर से खुला हो।

## आसन करने की सामग्री

समान भूमी पर चटाई के ऊपर दरी बिछा कर और खादी का कछैरा पहनकर नङ्गे शरीर इनका अभ्यास करना उचित है, यदि शीत अधिक प्रतीत हो, तो एक खुली कमीज़ धारण करली जाये, चटाई तथा दरी की चौड़ाई इतनी हो, जिस पर लेट कर दोनों ओर के बाहु पूरे २ सीधे फैल सकें, लम्बाई शरीर की लम्बाई से डेढ़ गुना या कम से कम शरीर के बराबर हो, और दरी के ऊपर सूत्र का बना हुआ सफेद मोटा वस्त्र बिछा लिया जाये, तो अधिक लाभकारी है।

# समय

इन का अभ्यास करने के लिये सब से उत्तम समय प्रातःकाल है, जब कि मनुष्य, शौच, दन्तधावन, व स्नान से निवृत्त हो चुका हो, और खान पान बिलकुल कुछ न किया हो, जितना उदर मल इत्यादि से शुद्ध तथा खाली होगा, उतना ही आसनों का उत्तम प्रभाव पड़ेगा, थोड़ा सा भी आहार करके ठीक प्रकार आसन करने से वमन ( Vomit ) हो जाने, या पचन क्रिया के यथायोग्य न होने से पाचक विभाग धीरे धीरे दूषित होने लगेगा, यदि प्रातःकाल समय का अभाव हो, तो सायंकाल शौच से निवृत होकर भोजन सेवन करने से कम से कम घण्टा पहिले आसन समाप्त करना लाभकारी होगा, प्रातःकाल इनसे निवृत्त होकर आध घण्टा पीछे गौ का दूध एक पाव से आध सेर तक पान करना उचित है, तत्पश्चात् प्रातःकाल का भोजन १२ बजे मध्याह्न काल में किया जाय, अन्यथा प्रातःकाल आसनों से कम से कम एक घण्टा पीछे भोजन कर के बारह एक बजे दूध पान किया जाये, सब से लाभकारी तो यही है, कि प्रातःकाल आसन करके दूध पान किया जाये।

श्री स्वामी कुवलयानन्द जी योगमीमांसा तथा आसन नामक पुस्तक में आसनों का अभ्यास करने के लिये सायंकाल का समय उत्तम कथन करते है, क्योंकि उन की सम्मति में उस समय पेशियों में अधिक लचक होती है, और आसन सुगमता

पूर्वक ठीक रीति से हो सकते हैं, उन का यह भी विचार है, कि प्रात:काल बिलकुल ख़ाली पेट आसनों का अभ्यास हानिकारक है, इन के आरम्भ करने से आध घण्टा पहिले प्रात: काल कुछ थोड़ा सा हलका आहार करना उपयोगी सिद्ध होगा, किन्तु मैंने अपने निरन्तर अभ्यास से अनुभव किया है, कि प्रात: काल निराहार आसन करने में सब से उत्तम लाभ होता है, क्योंकि उस समय उदय होते हुए सूर्य की किरणों के अमृतमय तेज से प्रभावित हुई शुद्ध वायु में जो ओजस्वी जीवन भरा है, वह सायं-काल के समय कहां प्राप्त हो सकता है ? इस क अतिरिक्त उस समय निराहार अवस्था में मनुष्य का मस्तिष्क, नाड़ी-मण्डल तथा शरीर विश्रान्त तथा-क्षोभ रहित होने के कारण, आसन व प्राणायाम द्वारा अधिक लाभ प्राप्त करने के योग्य होता है, प्रात: काल की अपेक्षा सायं काल सुगमता इसलिये प्रतीत होती है, कि दिनभर शरीर में चेष्टा होते रहने से पेशियें कुछ ढीली हो जाती हैं, किन्तु मैं ने इस पुस्तक में आसनों के आरम्भ में जो चार प्रकार के धनुरासन दिये हैं, इन से भिन्न २ पेशियों को गति देने से इन में ढीलापन आ जाता है, और आसन करने में भी कठिनाई प्रतीत नहीं होती ।

## आसनों के साथ अन्य व्यायाम

आसनों के साथ किसी दूसरे प्रकार का व्यायाम करना अत्यन्त हानिकारक होगा, यदि इन से किसी दूसरे समय पर कोई दूसरा व्यायाम किया जायगा, तो आसनों का पूरा २

लाभ नहीं होगा, हो सकता है कि उस से कुछ हानि भी हो जाये, क्योंकि आसन और दूसरी व्यायाम-पद्धतियें सर्वथा एक दूसरे के विरुद्ध मनुष्य शरीर पर प्रभाव डालती हैं, इसलिये आसनों को पूर्ण उपयोगी बनाने के लिये इनका पृथक अभ्यास करना ही कल्याणकारी है।

## आसन के अधिकारी

आसन के अधिकारी स्त्री, पुरुष, बालक, युवक तथा वृद्ध और व्याधित सभी हैं, किन्तु उनकी आयु, शारीरिक शक्ति तथा अवस्था के अनुसार आसन की विधि में भेद हो जाता है, और उन की अवस्था के अनुसार विशेष प्रकार के उपयोगी आसनों का प्रयोग कराया जाता है, बालकों को यह आसन धीरे २ कराने की आवश्यकता नहीं, स्त्रियों को ऋतुकाल में, या गर्भावस्था में आसन नहीं करने चाहिएं, ऐसी अवस्था में उन के लिये भ्रमण करना ही प्रयाप्त है, या दो चार ऐसे सुगम से आसनों को शीघ्रता पूर्वक किया जाये, जिन से भिन्न २ अङ्गों में साधारण सी गति हो सके, और उदर पर दबाव न पड़े, निम्नलिखित आसन सामान्य स्वस्थ मनुष्य के लिये हैं, रोगी मनुष्य के लिये बिना किसी अनुभवी शिक्षक के स्वयं इन का अभ्यास करना हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है, प्रारंभ-कर्ता भी यदि आरंभ करते समय प्रत्यक्ष रूप में शिक्षा प्राप्त कर सके, तो अधिक लाभदायक तथा गुणकारी होगा।

# आवश्यक सूचना

जो स्त्री पुरुष इन आसनों के अभ्यास से पूर्ण लाभ उठाना और इन के हानिकारक परिणाम से सुरक्षित रहना चाहते हैं, उन को इस पुस्तक को आरंभ से ले कर अन्त तक सावधानता से पढ़ कर इस में दी हुई विधि तथा नियम के अनुसार आचरण करना परमावश्यक है, अन्यथा नीचे दिये हुये आसनों को आरम्भ करना निरर्थक होगा, और जो इन के गुण तथा लाभ वर्णन किये गये हैं, उन की प्राप्ति कठिन होगी।

## उपवास (Fasting)

आसन तथा प्राणायाम का अभ्यास करते २ नित्य शारीरिक विष तथा मल का पूर्ण शोधन होने से योगी के शरीर में कोई व्यर्थ पदार्थ लेशमात्र भी एकत्र होने नहीं पाता, उस की आन्तें तथा बड़ा नल सर्वथा मल शून्य होता है, इस अवस्था में यदि वह उपवास करे, तो उस के लिये हानिकारक होगा, विशेष कारण से वह अधिक से अधिक तीन घण्टे तक उपवास कर सकता है, और यदि कभी दिन भर ही उपवास करना पड़े तो दूसरे दिन आसन तथा प्राणायाम का अभ्यास स्थगित किया जाये, यदि उदर में अजीर्णादि व शरीर में किसी प्रकार का अन्य विकार हो तो उचित रीति से उपवास करना लाभकारी सिद्ध होगा।

## यात्रा (Travelling)

योगी के लिये पैदल यात्रा करना उतना ही उचित है, जिस से उसे श्रान्ति प्रतीत न हो, गाड़ी इत्यादि में भी एक ही बार लम्बी यात्रा कार्यक्रम में विघ्नकारी होने के कारण यथा सम्भव त्याज्य है, मार्ग में यथोचित स्थान करते हुए नित्य का अभ्यास यथायोग्य हो सकता है, सवारी करने से पैदल चलना अधिक उपयोगी है, बाईसिकल तथा मोटरसाईकल इत्यादि की सवारी हानिकारक है।

## दीक्षा-काल

आसन तथा प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ करने के लिये वह ऋतु सब से उत्तम है, जब कि न ही अत्यन्त शीत, और न ही अत्यन्त गर्मी हो, ऐसे भी अति शीत तथा गर्मी में इनका अभ्यास करने से पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होता, इसी कारण इन का प्रयोग समयानुसार शीतल छाया तथा धूप में करना उपयोगी समझा गया है।

## एकाग्रता (Concentration of mind)

आसन तथा प्राणायाम का अभ्यास करते हुए जिस क्रिया का शरीर के जिस भाग पर जिस प्रकार से सामान्य तथा विशेष प्रभाव पड़ता हुआ प्रतीत हो, उसकी ओर मन को नियुक्त किया जाये, और शवासन करते हुए भिन्न २ प्रकार से प्रभावित अङ्गों की बहिष्करण (Process of elimination) तथा

आत्मीकरण (Process of assimlation) क्रिया पर पूर्ण ध्यान दिया जाए, अभ्यास करते समय सब प्रकार के मानसिक क्षोभों से मुक्त हो कर प्रसन्नतापूर्वक हार्दिक लग्न तथा रुचि के साथ प्रवृत्त होने से ही मनुष्य यथार्थ लाभ का भागी हो सकता है।

## विशेष सूचनाएं

१. प्रत्येक आसन तथा प्राणायाम करते समय मुख दान्तों तथा नेत्रों को बन्द रखना अति लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि इस अवस्था में मन को एकाग्र रखने, और दृष्टि द्वारा क्षीण होने वाली नाडीशक्ति (Nerve-force) को सुरक्षित करके, इसको शारीरिक तथा आत्मिक उन्नति के लिए उपयोगी बनाने में सहायता मिलती है, विपरीतकरणी मुद्रा (शीर्षासन) करते समय नेत्रों को बन्द रखना परमावश्यक है, अन्यथा रक्त-भार की अधिकता के कारण आसन नेत्रों तथा कान इत्यादि के लिए हानिकारक सिद्ध होगा, और वृक्ष-आसन की अवस्था में नेत्र खुले रहने चाहियें, नहीं तो शारीरिक तुलना ( Balance of the body ) को स्थिर रखना कठिन होगा।

२. इस पुस्तक में दी हुई विधि का पूरा २ अनुकरण करते हुए मनुष्य को जो लाभ थोड़े आसनों द्वारा हो सकता है, वह विधि के त्याग तथा अधूरे प्रयोग से सब आसन कर लेने से नहीं हो सकता, इस लिए अभ्यासी को उचित है, कि अल्प

समय में अधिक आसन करने की चेष्टा न करे, उसका ध्यान इस बात में न रहे, कि इतने समय म उसने सब आसन समाप्त करने हैं, प्रत्युत यह कि उस समय में जितने भी हो सकें, उन को पूर्ण रीति से विधिपूर्वक करना है।

३. नित्य-प्रति केवल उतने ही आसन किये जायें, जिन के करने से शरीर को किसी प्रकार का लेशमात्र भी खेद तथा श्रान्ति प्रतीत न हो, और आसन करते हुये तथा समाप्ति पर चित्त में प्रसन्नता तथा आनन्द प्रतीत होने लगे।

४. आसनों का अभ्यास करते सम। मौन धारण करना अत्यन्त आवश्यक है, यदि कभी कोई बात करनी ही पड़े, तो शवासन समाप्त करने के पश्चात् थोड़े ही शब्दों में कर ली जाये, सारे आसन समाप्त करके एक आध घण्टा शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम का कार्य नहीं करना चाहिये, ताकि रक्त-प्रवाह को, आसनों द्वारा शरीर में पैदा हुई २ रक्त की मांग को पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हो सके।

५. आसन करते समय इस पुस्तक में दिये हुये आसनों के क्रम तथा विधि का पूर्ण रोति से प्रतिपादन करना परमावश्यक है, इन आसनों का चुनाव तथा संग्रह करने, और इन के अभ्यास करने के क्रम तथा विधि को निश्चित करने में कई उपयोगी परिवर्तन करने पड़े हैं, जो गत कई वर्षों के निरन्तर अनुभव तथा वैज्ञानिक अन्वेषण का परिणाम हैं, इस समय तक जो बातें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई हैं, उन को ही इस पुस्तक में लेख-बद्ध किया है।

६. आसनों का संग्रह इस प्रकार किया गया है, कि यह शरीर के सब विभागों के लिये प्रत्येक प्रकार से पूर्ण उपयोगी सिद्ध हों, और कोई स्थूल से स्थूल तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग भी ऐसा न रहे, जिस पर इन का उत्तम प्रभाव न पड़ सके, इन की क्रम-रचना ( Arrangement of order ) करने और उप-आसनों को यथावश्यकता इनके साथ सम्मिलित करने में यह ध्यान रखा गया है, कि भिन्न २ अङ्गों पर प्रत्येक आसन तथा उप-आसन द्वारा भिन्न २ प्रकार से विरोधि तथा प्रतिविरोधि दबाव डाला जाये, ताकि किसी विशेष अङ्ग पर अधिक दबाव पड़ने से किसी प्रकार का अङ्ग-दोष पैदा न हो, यदि कोई व्यङ्ग-दोष भी पहिले हो, तो दूर हो सके, जहां प्रत्येक अङ्ग को यथा-सम्भव सब ओर गति दी जासके, वहां आवश्यकता से अधिक उन को चेष्टा करनी न पड़े, और इन सब चेष्टाओं तथा गतियों का उद्देश किसी विशेष भाग को उन्नत करना हो, इन की विधि का प्रयोजन यह है, कि प्रत्येक आसन में प्रयुक्त सेलों, तन्तुओं, तथा पेशी-समूह को धीरे २ तनते, या उस पर दबाव डालते हुये, इन पर गहरा से गहरा प्रभाव डाला जाये, जिस से उन की संकोच क्रिया पराकाष्ठा को पहुंच जाये, और फिर उनको धीरे २ प्रसरण कर के कुछ समय के लिए विश्राम का अवसर दिया जाये, जिससे वहिष्करण तथा आत्मीकरण क्रिया यथा-संभव और यथावश्यकता पूर्ण मात्रा में होसके, और

स्थूल पेशी से लेकर सूक्ष्म चेतना-नाडी तक उसका प्रभाव पड़ सके।

७. उपरोक्त फल प्राप्त करने के लिये साधक को चाहिए, कि वह प्रति दिन धीरे २ अभ्यास की योग्यता को बढ़ाता जाये, अर्थात् आरम्भ में आसनों को अपनी शक्ति के अनुसार कुछ शीघ्रता से करते हुए, नित्य धीरे से धीरे करने का प्रयत्न करता जाये, किन्तु अपनी शक्ति से बढ़ कर धीरे २ करने की कभी चेष्टा न करे, और तनिक-आसनों (Stretching-Poses) में ज्यों २ शरीर में लचक बढ़ती जाये, त्यों २ भिन्न २ अङ्गों को अधिक तनने का यत्न करता जाये।

## आसन तथा प्राणायाम

प्राणायाम का विशेष विवर्ण तो पृथक पुस्तक में किया जयगा, किन्तु यहां पर इतना कथन करना आवश्यक प्रतीत होता. है, कि निम्न-लिखित आसनों का अभ्यास करते समय **सहित-कुम्भक** प्राणायाम, अर्थात् पूरक ( धीरे २ श्वास को, मुख बन्द करके, नासिका द्वारा जितना हो सके भीतर खींचना ), आन्तर-कुम्भक ( विना किसी प्रकार के लेश मात्र कष्ट अथवा फुफुस पर दबाव प्रतीत करने के यथाशक्ति उसको भीतर ठहराना ), रेचक ( मुख बन्द करते हुए नासिका द्वारा धीरे २ श्वास को बाहिर निकालना ), और वाह्य-कुम्भक ( किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत न करते हुए सुगमता पूर्वक यथाशक्ति

श्वास को बाहिर ठहराना ), इन चारों क्रियाओं का आसन करते समय, निरन्तर यथाक्रम उक्त विधि से बार २ प्रयोग करना परमावश्यक है, किन्तु आरम्भ में इस कुम्भक प्राणायाम को सुगमता पूर्वक पूर्ण रीति से करना कठिन प्रतीत होगा, और हठ पूर्वक करना हानिकारक सिद्ध होगा, इसलिये पहिले पहिल आसन करते हुए मुख बन्द करके नासिका द्वारा श्वास प्रश्वास को स्वाभाविक गति से चलने दिया जाये, और ज्यों २ आसन के करने में सुगमता प्रतीत होने लगे, त्यां २ पूरक तथा रेचक को धीरे २ करने का यत्न किया जाये, इन में कुछ सफलता प्रतीत होने पर, दोनां प्रकार के कुम्भक को भी यथाशक्ति क्षण-मात्र करना उचित है, जैसे २ आसनों के अभ्यास में सिद्धि प्राप्त होती जायगी, वैसे २ प्राणायाम भी सिद्ध होता जायगा, अन्त में इस पर पूर्ण अधिकार हो जाने पर, पूरक तथा रेचक जितना भी हो धीरे २ किया जाये, कुम्भक को हठ से अधिक समय तक करने की लेश-मात्र भी चेष्टा न की जाये, पूरक तथा रेचक के लिये समय नियत करना भी हानिदायक होगा, स्वाभाविक रीति से धीरे २ अभ्यास करते हुए स्वयमेव वृद्धि होते २ जितना समय पूरक तथा रेचक करने में लग सके, और जितना गहरे से गहरा श्वास सुगमता से लिया जा सके, उस से अधिक हठ से बढ़ाने की चेष्टा न की जाये, और कुम्भक करते

सनय श्वास को भीतर तथा बाहिर उतना ही स्थिर करने की चेष्टा की जाये जिस से कुछ कष्ट प्रतीत न हो।

## आसन-स्थिति का नियम

इन आसनों को धीरे २ यथाशक्ति करने में जितना अधिक समय लगेगा वह गुणकारी होगा, किन्तु किसी आसन की अन्तिम दशा में स्थित रहने के लिये स य नियत करना हानिकारक सिद्ध होगा, चाहे वह दो तीन मिण्ट भी क्यों न हो, इस पुस्तक में दी हुई विधि के अनुसार अभ्यास करने से मनुष्य यत्न करने पर भी किसी आसन में कुछ क्षण (seconds) से अधिक स्थिर रहना अत्यन्त कठिन प्रतीत करेगा, जो लोग शीर्षासन को धीरे २ बढ़ाते हुये एक २ दो २ घण्टे तक उस में सिर पर खड़े रहते हैं, ताकि उन के सिर के बाल काले हो जायें, अथवा अधिक लाभ प्राप्त कर सकें, उनके नेत्र, कान, हृदय, तथा फुफुस इत्यादि में कई प्रकार के दोष आने लगते हैं, सिर का रक्त-भार बढ़ जाता है, कब्ज़ी का प्रादुर्भाव होने लग जाता है, इस आसन को पांच मिण्ट तक करने से भी किसी न किसी समय मनुष्य के शरीर में उक्त प्रकार के विकार आजाते हैं, श्री स्वामी कुवलयानन्द जी इस को बीस पचीस मिण्ट तक स्थित रहने के लिये योग-मीमांसा में समय नियत करते हैं, किन्तु अपनी नई आसन नामक पुस्तक में लिखते हैं, कि "शीर्षासेन के लिये २०-२५- मिण्ट, इसको पृथक् करने में

दिये जायें, दूसरे आसनों के साथ करते समय इसको पांच मिण्ट तक किया जाये" किन्तु मेरे अनुभव के अनुसार दोनों ही प्रकार से करने में इससे लाभ के स्थान में हानि होती है, पूज्य स्वामी जी योग-मीमांसा में आसनों को अधिक समय तक करने में नाडी-मण्डल की शक्ति व आत्मिक उन्नति का लाभ वर्णन करते हैं, और कथन करते हैं, कि "यदि यह कहा जाये कि एक आसन में अधिक समय स्थित होने में शरीर के विशेष भाग को अधिक रक्त मिलने से, दूसरे भागों को रक्त उन की आवश्यकता से कम मिलेगा, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि रक्त-प्रवाह-रोधिनी-नाडियां ( Vasomotary nerves ) उस विशेष भाग में अधिक मात्रा में जाने वाले रक्त-प्रवाह को रोक देंगी, जिस से दूसरे भागों को आवश्यकता पूर्वक रक्त प्राप्त होगा, और उन को किसी प्रकार की हानि नहीं होगी।"

किन्तु मेरे विचार में तो रक्त-प्रवाह के नियमानुसार सभी भाग यथावश्यकता शवासन में ही रक्त प्राप्त करने के योग्य हो सकते हैं, यदि पूज्य स्वामी जी के उपरोक्त कथन को सत्य मान लिया जाये, तो शरीर के जिस विशेष भाग पर विशेष आसन की अवस्था में अधिक दबाव पड़ने से रक्त की मांग अधिक बढ़ गई है, वहां पूर्ण मात्रा में रक्त न पहुंचने से उस भाग को हानि होगी, इस लिये मेरी सम्मति में तो किसी आसन में कुछ क्षण (Few seconds) से अधिक ठहरना पूर्ण उपयोगी सिद्ध नहीं होगा।

---

# आसन तथा उनकी विधि ।

## शवासन (विश्राम-आसन)

विधि—सन्मुख पृष्ठ पर दिये हुए चित्र के समान पीठ पर लेट कर, बाहुओं को टांगों की ओर सीधे फैलाकर, हाथों के तलवों को भूमि पर टिकाकर, एड़ियों को परस्पर मिला कर, पैरों को खुला, और नेत्रों तथा मुख को दांतों सहित बन्द रखते हुए सारे शरीर को पूर्ण रीति से सर्वथा ढीला कर के, इस अवस्था में तीन वार **सहित-कुम्भक** प्राणायाम का प्रयोग किया जाये। ( प्रथम आकार )

तत्पश्चात् दोनों जाहुओं को थोड़ा सा झुकाते हुये, दाहिनी भुजा की कोहिनी को यथोचित झुका कर शिर के दाहिनी ओर सरहाने के समान टका कर दाहिनी ओर करवट लो और बाईं भुजा को टांगों की ओर फैलाते हुये हथेली को बाईं टांग पर टका दो। ( आकार दूसरा )

इसी प्रकार फिर पीठ पर लेट कर बाईं ओर करवट लो और पुन. पीठ पर लेट कर आराम से बैठो। ( आकार तीसरा )

नोट—आकार को बदलते समय पूरक करो, और प्रत्येक अवस्था में एक सहित-कुम्भक प्राणायाम करो, और शरीर को ढीला रखो।

**नाम**—इसे **शवासन** अथवा **मृतासन** इस लिये कहा जाता है, क्योंकि इस में सारा शरीर ढीला कर के भीतर के मृतपदार्थ

(Dead-matter) का वहिष्कार किया जाता है, और मरे हुए तन्तुओं तथा सेलों के स्थान में नई रचना होने का पूर्ण अवसर मिलता है।

**फल** दूसरे आसनों का अभ्यास करने से असाधारण मात्रा में शरीर के तन्तुओं तथा सेलों के नाश से, भिन्न २ स्थानों में एकत्र हुए २ विष के कारण होने वाली शारीरिक श्रान्ति दूर हो कर, मनुष्य में नव जीवन का सञ्चार होता है, इस के यथोचित अभ्यास से मनुष्य में धीरे २ निवर्तन-क्रिया (Katabolism) की कमी और परिवर्तन-क्रिया (Anabolism) की वृद्धि होते जाने से, योगी वृद्ध-अवस्था तथा व्याधि का नाश करते हुए, मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है, और उसमें आत्मिक दिव्य-शक्ति का विकाश होने लगता है।

**शवासन** का प्रयोग नीचे दिए हुए प्रत्येक **आसन** तथा **उपासन** के पश्चात् करना परमावश्यक है, श्री स्वामी **कुवलयानन्द** जी ने इस आसन को भी दूसरे आसनों के समान **योगमीमांसा** तथा **आसन** नामक पुस्तक में, एक पृथक आसन वर्णन किया है, और किसी भी योग के आचार्य तथा शिक्षक ने प्रत्येक आसन के साथ इस के अभ्यास का विधान नहीं किया, किन्तु मैंने अनुभव-द्वारा ज्ञात किया है, कि इस का प्रत्येक आसन के पीछे अभ्यास करने से ही मनुष्य इस का उत्तम फल प्राप्त कर सकता है, और दूसरे आसनों को पूर्ण उपयोगी बना सकता है, सब आसनों की समाप्ति पर केवल अन्त

में करने से भी इस का वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक आसन में साथ २ पूर्ण रीति से बहिष्करण तथा आत्मीकरण के न होने से, मनुष्य की सेलें तथा तन्तु, शुद्ध-रक्त को आवश्यकता के अनुसार प्राप्त नहीं कर सकते, उनमें ओज तथा शक्ति का संचार पूर्ण रीति से होने के लिये, उन को यथोचित अवसर नहीं मिल सकता, और शरीर आसन प्रति आसन के निरन्तर अभ्यास से श्रान्त होते जाने से, प्रत्येक आसन को यथायोग्य करने की शक्ति कम से कम प्रतीत करने लगता है, इसी बात को ज्ञात करते हुए श्री स्वामी कुवलयानन्द जी ने **आसन** नामक पुस्तक में यह स्वीकार किया है, कि "सब आसन एक ही बार नहीं करने चाहियें, बीच २ में कुछ विश्राम भी करना उचित है" परन्तु इस प्रकार विश्राम करने से भी विहिष्करण तथा आत्मीकरण पूर्ण रीति से नहीं होसकता, और यदि आसनों के अन्त में **शवासन** अथवा **कपालभाति** प्राणायाम किया जाये, तो भी लाभकारी नहीं होगा, कपालभाति के करने से तो उस अवस्था में उलटा हृदय तथा फुफुस पर हानिकारक प्रभाव पड़ेगा।

मेरी सम्मति में आसनों का अभ्यास आरंभ करते समय सब से पहिले **शवासन** का प्रयोग करना चाहिये, ताकि रक्त-प्रवाह सामान्य अवस्था में आजाये, किसी शारीरिक भाग में रक्त की असाधारण मांग न रहे, और विषात्मिक-पदार्थ का शोधन हो जाये, और साथ ही प्रत्येक आसन के पश्चात् इसको

उतने समय तक किया जाये, जब तक रक्त-प्रवाह सामान्य अवस्था में आकर मनुष्य मानसिक प्रसन्नता तथा आन्द अनुभव न करे, और शरीर में लेशमात्र भी श्रान्ति व खेद प्रतीत हो, किन्तु आसनों की समाप्ति पर इसको प्राय: पांच दस मिनट तक करना उचित है।

आसन करके **शवासन** में यदि आरम्भ में श्वास शीघ्र चल रहा हो, तो उस को एक ही बार धीमा करने का यत्न न किया जाये, और जब धीरे २ स्वयमेव थोड़ा सा धीमा हो जाये, तो **सहित कुम्भक** प्राणायाम को यथाशक्ति उक्त विधि से किया जाये, तो इस का अभ्यास शवासन में सुगमता से करने का अवसर मिल सकेगा, इस प्रकार अभ्यास करते २ समय आयेगा, कि मनुष्य आसन तथा प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त कर लेगा, इस अवस्था में जहां शरीर की एक २ गति उसके आधीन होगी वहां श्वास पर भी उसका पूर्ण अधिकार होगा, जिस से प्राण-शक्ति दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होगी, जिस का परिणाम यह होगा, कि कठिन से कठिन परिश्रम करने पर भी उस के हृदय की गति कम से कम तेज़ होगी, और आयु में वृद्धि होने पर हृदय-स्पन्द की संख्या में वृद्धि होने के स्थान पर न्यूनता प्रतीत होगी, इसको मैंने स्वयं अपने अनुभव द्वारा ज्ञात किया है, इस का फल यह होगा कि दिन प्रति दिन ओज की वृद्धि, आत्मिक-शक्ति का विकाश, वृद्धावस्था का अभाव, व्याधि का नाश, यौवन तथा वास्तविक सौन्दर्य का प्रादुर्भाव होने लगेगा, जिससे मनुष्य अक्षय आनन्द को उपलब्ध करेगा।

# १. प्रथम धनुरासन

**विधिः**—आरम्भ में मनुष्य भूमि पर बैठ कर दाईं टांग को सीधा फैलाता है, और बाईं टांग को भी उसी प्रकार फैला कर दाईं टांग के ऊपर रख लेता है, बांये हाथ की तलि को जाहनु के बराबर भूमि पर इस प्रकार रखता है, कि हाथ की अङ्गुलियां परस्पर मिली रहती हैं, तत्पश्चात् बायें पैर के अङ्गूठे को दायें हाथ से इस प्रकार दृढ़ पकड़ता है, कि उस के हाथ का अङ्गूठा नीचे की ओर रहते हुए बाहिर से, और अङ्गुलियां भीतर की ओर से, इसके इर्द गिर्द लिपट जाते हैं।

(प्रथम धनुरासन, प्रथम आकार)

तब साधक दायें पैर को धीरे २ बाहिर की ओर पूर्ण रीति से तन कर, बायें पैर को तनते हुये दायें हाथ से धीरे २ ऊपर को उठाता है, और साथ ही बायें हाथ को तन कर ऊपर उठाता जाता है, जब दोनों बाहु दोनों स्कन्धों (shoulders) के बराबर आजाते हैं, तो इस अवस्था में धीरे २ पृष्ठ-वंश और सिर को ऊपर की ओर तनते हुये, स्कन्धों तथा सिर को पीछे की ओर तनता है, इस अवस्था में उस की टांगें और बाहु आगे की ओर और पृष्ठ ( पीठ ) ऊपर की ओर पूर्ण रीति से तन जाते हैं।

( प्रथम धनुरासन, अन्तिम आकार )

तत्पश्चात् बायें हाथ को तनकर दायें हाथ के बराबर लाते हुये, दोनों बाहु तथा स्कन्धों को एक रेखा में लाकर सारे शरीर

को धनुष् के समान पूर्ण तान की अवस्था में कुछ क्षण रख कर, अत्यन्त धीरे २ सारे अङ्गों को यथाक्रम ढीला करते हुये आरम्भक अवस्था में आजाता है।

तब इसी प्रकार बायें हाथ से दायें पैर के अङ्गूठे को पकड़ कर, क्रम पूर्वक सब क्रियायें की जाती हैं।

नाम—इस में चूंकि शरीर को धनुष के समान तनने की क्रिया होती है, इसलिये इसको धनुरासन कहते हैं, इस प्रकार के चार धनुरासन और हैं, जिन में भिन्न २ प्रकार से शरीर तन जाता है।

फल—इस आसन के द्वारा दोनों टांगों तथा बाहुओं की पेशियों, और पृष्ठ-वंश के मोहरों तथा पसलियों को ऊपर की ओर तनने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है, उद्गामी-बृहदन्त्र, (As-cending-colon) और अधोगामी-बृहदन्त्र (Des-cending-colon) की पेशियां भी इस से प्रभावित होती हैं, पीठ, ग्रीवा, सिर तथा उदर पर भी इस का सामान्य प्रभाव पड़ता है, इस आसन में उपरोक्त स्थानों की अस्थियों को भी यथोचित भाग लेना पड़ता है, जिस से उन अङ्गों में मृत-पदार्थ के एकत्र होने से रक्त की मांग बढ़ जाती है।

इस मांग को तृप्त करने के लिये शुद्ध रक्त को प्रवाहित करने, व पेशियों को यथोचित आत्मीकरण क्रिया करने का अवसर देने, तथा प्रयुक्त नाडियों में ओज का सञ्चार करने के लिये आसन के अन्त में शवासन का प्रयोग किया जाता है।

# २. दूसरा धनुरासन

विधि—दायीं टांग सीधी फैला कर भूमि पर बैठ जाओ बायीं टांग को भीतर मोड़ कर, बायें पैर को दायें जाहु की ऊपर की ओर रख दो, बायें पैर के अंगूठे को दायें हाथ से इस प्रकार दृढ़ पकड़ो, कि हाथ का अंगूठा ऊपर की ओर रहते हुए, अंगुलियां पैर के अंगूठे के गिर्द लिपट जायें, बायें बाहु को धीरे २ तनकर बायें स्कन्ध की सीध में ले जाओ। ( दूसरा धनुरासन, प्रथम आकार )

दायीं टांग के पैर को धीरे २ बाहिर को फैलाकर, और पीठ, ग्रीवा तथा सिर को ऊपर को तनकर, शरीर के पूर्व-भाग (Trunk को दायीं टांग के साथ सम-कोण ( Right-angle ) बना दो. बायें जाहु को नीचे की ओर दबा कर, दायें हाथ से बायें पैर को धीरे २ ऊपर उठाते हुये, दायें स्कन्ध की सीध में ले आओ, भीतर की मुड़ी हुई दायीं कोहनी तथा बाहु न ही शरीर के साथ स्पर्श करें, और न ही बहुत परे हटे हुये हों। ( दूसरा धनुरासन, अन्तिम आकार )

इस प्रकार तनी हुई अवस्था में कुछ क्षण स्थिर रह कर विप्रीत-क्रम ( Inverse order ) से अत्यन्त धीरे २ आरम्भ-दशा में आजाओ।

बायीं टांग को फैलाकर और दायें पैर के अंगूठे को बायें हाथ से पकड़ कर उक्त प्रकार से उस को दूसरी बार करो, तब अन्त में यथा-पूर्व शवासन करो।

**फल**—इस का विशेष प्रभाव दोनों बाहु तथा स्कन्धों की पेशियों पर, अन्त्रपुट, श्रोणि-प्रदेश तथा वस्तिगह्वर पर, और सामान्य प्रभाव टांगों, पीठ, छाती, तथा उदर की पेशियों पर पड़ता है, शवासन में पूर्ण बहिष्करण तथा आत्मीकरण द्वारा उक्त अङ्गों तथा भागों में ओज तथा बल का सञ्चार होता है, और इन के साथ सम्बन्ध रखने वाली अस्थियों तथा नाडियों की शक्ति बढ़ती है।

## ३. तीसरा धनुरासन

**विधि**—दायीं टांग को सीधा फैलाकर बैठ जाओ, बायीं टांग के जानु को भीतर की ओर मोड़ कर, बायीं एड़ी को दायें उरु के अन्तिम भाग पर रक्खो, बायें पैर के अंगूठे को दायें हाथ से इस प्रकार पकड़ो, कि दायें हाथ की अन्त की तीन अंगुलियां बायें पैर के अंगूठे के गिर्द बाहिर की ओर से लिपट जायें, और दायें हाथ का अंगूठा तथा इस के साथ की अंगुली बायें पैर के अंगूठे के बाहिर की ओर फैली रहें, साथ ही दायें पैर के अंगूठे को बायें हाथ से इस प्रकार पकड़ो, कि बायें हाथ की अंगुलियां भीतर की ओर से, और अंगूठा बाहिर की ओर से पैर के अंगूठे के गिर्द लिपट जायें। ( तीसरा धनुरासन, प्रथम आकार )

तत्पश्चात् धीरे २ दायें पैर को बाहिर की ओर, और ग्रीवा तथा पीठ को पीछे की ओर पूर्ण रीति से तनने की चेष्टा करें, साथ ही बायें पैर को दायें हाथ से भीतर की ओर खेंचते

हुये, बायें जाहु को यथासंभव बाहिर की ओर तनें। (तीसरा धनुरासन, अन्तिम आकार )।

इस प्रकार पूर्ण तनी हुई अवस्था में शरीर को कुछ क्षण रख कर, धीरे २ ढीला करते हुए आरम्भक अवस्था में आ जायें।

तब बायीं टांग को फैलाकर, और दाईं एड़ी को बायें उरु पर रख कर, हाथों का परिवर्तन करके, इन को उसी प्रकार से पकड़ कर, पहिले के समान शरीर को तन कर, धीरे २ ढीला करें, अन्त में यथापूर्व शवासन करें।

फल—इस आसन में पहिले धनुरासन के समान भिन्न २ अंगों को तनने का जहां अधिक अवसर मिलता है, वहां ग्रीवा, सिर, कटि-प्रदेश, और अंगुलियों सहित हाथों तथा पैरों की पेशियों की विशेष प्रकार से तान क्रिया होती है, इन से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न २ अस्थियों को पूर्ण रीति से तनने और नाडियों को प्रभावित होने का अवकाश प्राप्त होता है।

## ४. चौथा धनुरासन

विधि—भूमि पर बैठ कर, दाईं टांग और बायें बाहु को फैला कर, बायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को तीसरे धनुरासन में बताई हुई विधि के अनुसार पकड़ो, दायें बाहु की कोहनी को झुका कर, दायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को दूसरे धनु-रासन में बताई हुई विधि के अनुसार पकड़ो, और अपने आप

को चौथे धनुरासन के प्रथम आकार में ले आओ ( चौथा धनुरासन, प्रथम आकार )

दायें पैर को बाहिर की ओर, और पीठ को ऊपर की ओर तथा बाहिर की ओर पूर्ण रीति से तन कर, बायें जाहु को नीचे दबा कर, दायीं कोहनी को धीरे २ ऊपर उठाते हुये, इस को दायें स्कन्ध के बराबर ले आओ। ( चौथा धनुरासन, दूसरा आकार )

तत्पश्चात् दायीं कोहिनी को धीरे २ पीछे की ओर ले जाते हुये, स्कन्ध से जितना परे ले जा सको ले जाओ, इस अवस्था में बायां जाहु बायें बाहु से कुछ भीतर की ओर आजायेगा, और दायीं कोहनी दायें स्कन्ध से कुछ नीचे हो जायगी, किन्तु सारा शरीर पूर्ण तान की अवस्था में होगा। ( चौथा धनुरासन, अन्तिम आकार )

इस पूर्ण तान की अवस्था में कुछ क्षण स्थिर रह कर, धीरे २ शरीर को ढीला करते हुये, क्रमशः अपनी पूर्व दशा में आजाओ।

टांगों और बाहुओं में परिवर्तन करते हुए, इसी प्रकार इस आसन को दूसरी वार करो, इस के पीछे यथापूर्व शवासन में स्थित हो जाओ।

फल—इस आसन में जहां शरीर के भिन्न २ अङ्गों पर दूसरे व तीसरे आसन के समान प्रभाव पड़ता है, वहां दोनों बाहु

तथा टांगों की पेशियों व अस्थियों में भिन्न २ प्रकार की गति होती है।

उपरोक्त चारों धनुरासन प्रायः शरीर की सभी ऐच्छिक पेशियों तथा अस्थियों को भिन्न २ ओर से गति देकर भिन्न २ प्रकार से तनकर, इन पर प्रभाव डालते हैं, पृष्ठ-वंश के नाडी-केन्द्रों तथा शरीर में फैले हुये नाडी-सूत्रों की शक्ति को बढ़ाते हैं, उदर की अनैच्छिक पेशियों पर भी इन का भिन्न २ प्रकार से कुछ प्रभाव पड़ता है, अस्थियों तथा पेशियों में लचक स्थिर रखने तथा लुप्त हुई २ लचक को पैदा करने में भी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

पहिले तीन आसन योग की पुस्तकों में नहीं मिलते, यह मैं ने स्वयं इस आसन-पद्धति में सम्मिलित किये हैं।

## ५. गोरक्षासन

**विधि:** भूमि पर सीधा बैठ कर दोनों टांगों को भीतर की ओर इस प्रकार मोड़ो, कि दोनों पैरों के तलवे एक दूसरे के साथ मिल जायें, तब दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे के भीतर डालकर, जुड़े हुए हाथों से, दोनों मिले हुए पैरों की अंगुलियों को ऊपर से इस प्रकार दबाओ, कि दोनों हाथों की तलियां दोनों पैरों को भीतर की ओर पूरा २ दबाव डाल सकें, इस अवस्था में शरीर के पूर्व भाग को सीधा तनते हुये जानुओं को नीचे की ओर झुका कर, और

बाहुओं को तन कर हाथों के दवाव से धीरे २ पैरों को भीतर की ओर ले जाते हुये, जुड़ी हुई एड़ियों को गुदा के सन्मुख जमा दो। ( गोरक्षासन, प्रथम आकार )

तब कोहनियों को कुछ झुका कर, पैरों की अंगुलियों को हाथों से दबाये रखो, और धीरे २ दोनों जाहुओं को और नीचे झुकाते हुये भूमि पर लगाने का यत्न करो, और जब शनैः शनैः अभ्यास करते हुये जाहू भूमि पर टिक जायें तो फिर इन को बाहिर की ओर तनो, और शरीर का ऊपर का भाग सर्वथा सीधा रक्खो ( गोरक्षासन, अन्तिम आकार )

इस तनी हुई अवस्था में शरीर को कुछ क्षण रख कर धीरे २ यथा-क्रम ढीला कर के शवासन करो।

**फल**—इस आसन में बाहुओं तथा टांगों की पेशियों पर बाहिर से दबाव पड़ने से कोहनियों तथा जाहुओं की पेशियों को प्रभावित होने का अवसर मिलता है, शरीर के ऊपर के भाग पर भी इस का प्रभाव पड़ता है, इसी प्रकार भिन्न २ अस्थियों तथा नाड़ियों का भी प्रयोग हो जाता है, इन सब प्रकार की गतियों का उद्देश शुक्र-ग्रन्थियों, प्रोस्टेट ग्रन्थियों तथा डिम्ब-ग्रन्थियों पर विशेष प्रभाव डालते हुये, स्त्री पुरुष के ब्रह्मचर्य की रक्षा करना है, इस से मनुष्य के ओज की वृद्धि तथा रक्षा करने में सहायता मिलती है, स्त्री पुरुषों की नपुंसकता

को दूर करने में इस का विशेष प्रभाव पड़ता है, स्वप्न-दोष तथा मासिक स्राव के रोगों का नाश होता है।

नाम—इस आसन का नाम **गोरक्षासन** इस लिये है, कि महायोगी **गोरक्ष-नाथ** ने लोगों के हित के लिये इस को प्रस्तुत किया है।

## ६. पश्चिमोत्तानासन

**विधिः—**दोनों जाहुओं को मोड़ कर इस प्रकार बैठो कि एड़ियां परस्पर मिली हुई भूमि पर टिकी रहें, पैर ऊपर को उठे हुये कुछ खुले रहें, और दोनों टांगें कुछ दोहरी होती हुई उरुदेश के साथ भीतर की ओर से स्पर्श करें।

तत्पश्चात् दायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को, और बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को इस प्रकार पकड़ो, कि हाथ का अंगूठा तथा इस के साथ की अंगुली पैर के अंगूठे के बाहिर की ओर से पैर की तली पर जमे रहें, और शेष तीनों अंगुलियां पैर के अंगूठे के बाहिर की ओर से यथासम्भव भीतर की ओर ले जाकर इसके गिर्द लिपटा दी जायें और जाहु बाहिर की ओर से भुजाओं के साथ लगे हुये हों। ( पश्चिमोत्तानासन् प्रथम आकार )

तत्पश्चात् स्कन्धों तथा पीठ को पीछे और ऊपर की ओर तन कर और पैर के अंगूठों को नीचे झुकाते हुये बाहिर की ओर तनते हुये एड़ियों को कुछ आगे बढ़ाओ ( दूसरा आकार )

फिर एड़ियों को धीरे २ बाहिर की ओर ले जाते हुए, पैरों, टांगों तथा जान्हुओं को जितना हो सके पूर्ण रीति से तन दें, किन्तु हाथ की अंगुलियां अपने स्थान से न हटें। ( पश्चिमोत्तानासन, तीसरा आकार )

तब इस पूर्ण तान की अवस्था में धीरे २ सिर को नीचे झुकाते हुये, जाह्नुओं के ऊपर टिकादो। ( पश्चिमोत्तानासन अन्तिम आकार )

कुछ समय इस अवस्था म स्थिर रह कर, धीरे २ यथाक्रम सब अङ्गों को ढीला कर के प्रथम उपासन के पश्चात् यथा पूर्व शवासन करो।

सूचना—इस आसन में टांगों तथा बाहुओं को पूर्ण रीति से तान की अवस्था में रखते हुये ही जितना सिर नीचे झुक सके, झुकाने की चेष्टा की जाये, जाह्नुओं के साथ शिर के सुगमतापूर्वक स्पर्श करने की योग्यता हो जाने पर, सिर को भीतर की ओर दबाते हुये, जाह्नुओं से जितना हो सके ऊपर पेट की ओर ले जाने की चेष्टा करें, इस आसन को करते हुये पहिले प्रायः बहुत कठिनता प्रतीत होगी धीरे २ धैर्यपूर्वक इस का नित्य अभ्यास करने से मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकेगा, यदि दोनों टांगों को एक साथ तनना पहिले अत्यन्त कठिन प्रतीत हो, तो एक २ करके, बारी २ से दोनों टांगों को फैलाने का यत्न किया जाये, यदि इसका अभ्यास करते हुये मध्य में, आन्तों में दर्द प्रतीत होने लगे, तो उस समय तुरन्त प्रथम-उपासन कर लिया जाये।

नाम—इस को पश्चिमोत्तानासन इस लिये कहा जाता है, कि इस में पहिले शरीर के पश्चिमी अर्थात् निचले भाग को अत्यन्त तनने का अवसर मिलता है, और शरीर की प्रायः सब पश्चिमी अर्थात् बाहिर की पेशियां तन जाती हैं।

फल—इस आसन में टांगों तथा बाहुओं के अत्यन्त तन जाने से पाचक विभाग पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है, जिगर, प्लीहा, क्लोम, वृक्क तथा उपवृक्क सम्बन्धि रोग दूर होकर इन की शक्ति बढ़ती है, जठराग्नि की वृद्धि से आमाशय की पाचन शक्ति उत्तेजित होती है, उदर की कबज़ी इत्यादि रोग नष्ट होते हैं, मोटापन का रोग धीरे २ निवृत्त होने लगता है, पसलियों तथा पृष्ठ-वंश के मोहरों को ऊपर की ओर तनने का पूर्ण अवकाश प्राप्त होता हैं, जिस से मनुष्य के शरीर की लम्बाई में भी वृद्धि हो सकती है, पृष्ठ-वंश के नाडिकेन्द्र ओज-सम्पन्न होते हैं, पैरों के अंगूठों के तनने से, गुदा तथा वस्ति-गह्वर की पेशियों, पर प्रभाव पड़ने के कारण बवासीर के रोग की निवृत्ति होती है, चुल्लिका-ग्रन्थि, शुक्र-ग्रन्थियों व डिम्ब-ग्रन्थियों पर भी इस से कुछ प्रभाव पड़ता है।

## प्रथम-उप-आसन

### (पश्चिमोत्तान के पश्चात्)

विधि—पश्चिमोत्तानासन के अन्त में शरीर को ढीला करके, टांगों तथा बाहुओं को वैसे ही फैलाये रखें, अथवा हाथों

की अंगुलियों को एक दूसरे के भीतर डालते हुये पैरों के पार लेजायें (प्रथम आकार) तब दोनों हाथों को पृथक् करके धीरे २ ऊपर को उठाते हुये, सीधे सिर के ऊपर ले जायें, (दूसरा आकार) तत्पश्चात् दोनों हाथों को स्कन्धों के ऊपर से पीठ की ओर नीचे झुकाते हुये, इन की तलियों को स्कन्धों की सीध में दोनों ओर भूमि के ऊपर टिका दें, (तीसरा आकार) पैरों तथा टांगों को बाहिर की ओर फैलाते हुये कटि-प्रदेश को यथा-सम्भव ऊपर उठा कर, पीठ को सीधा रख कर, सिर को नीचे झुका दें। (अन्तिम आकार)

इस के पीछे धीरे २ कटि को नीचे झुकाते हुये भूमि पर बैठ जाओ, और यथापूर्व शवासन करो।

**फल**—पश्चिमोत्तान आसन द्वारा कटि पर नित्य एक ही ओर दबाव पड़ने से, वहां दर्द होने लग जाता है और कभी २ आसन करते हुये आन्तों पर अधिक दबाव पड़ने से, वहां दर्द प्रतीत होता है, इन से सुरक्षित करने के लिये इस उप-आसन द्वारा कटि तथा आन्तों पर विरुद्ध प्रभाव डाला जाता है।

## दूसरा उप-आसन

### (पश्चिमोत्तान के पश्चात्)

**विधि**—पीठ पर लेट कर दोनों टांगों को बाहिर फैला दो, और दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे में डाल कर

भुजाओं को सिर के ऊपर की ओर सीधा तन दो। ( प्रथम आकार )

तब पैरों को धीरे २ बाहिर की ओर तनते हुए, टांगों को पूर्ण रीति से तन दें, और दोनों एड़ियों को, विना लेश मात्र हिचकोला देने के, भूमि से कुछ थोड़ा सा ऊपर उठा कर, दायीं टांग को बायीं टांग से कुछ ऊपर उठायें। (दूसरा आकार)

तत्पश्चात् टांगों और भुजाओं को पूर्ण तान की अवस्था में, और शरीर के पूर्व-भाग को अत्यन्त निश्चल रखते हुए, दायीं टांग को धीरे २ सीधा ऊपर उठा कर, बायीं टांग को भूमि से केवल आध इञ्च ऊपर रखते हुये यथा-संभव धीरे २ दायीं ओर ले जाओ, किन्तु कटि के भाग को ऊपर उठने न दो। ( अन्तिम आकार )

तब धीरे २ आरम्भिक दशा में आ जाओ, और फिर इसी प्रकार बायीं टांग को ऊपर उठाते हुए, दायीं टांग को बायीं ओर ले जाओ, अन्त में यथापूर्व शवासन का अभ्यास करो।

फल—इस से कटि की पेशियों तथा अस्थियों को दायीं तथा बायीं ओर गति देने का पूर्ण अवकाश मिलता है, और इससे पश्चिमोत्तान आसन द्वारा कटि-प्रदेश में होने वाली जड़ता (Stiffness) की निवृत्ति होती है, इसका प्रभाव पीठ के दायें तथा बायें पक्ष पर भी पड़ता है, और पृष्ठ-वंश के मोहरों को सीधा तनने का अवसर प्राप्त होता है।

———

# ७. पांचवां धनुरासन

विधि—उदर की ओर भूमि पर लेट कर, हाथों के सहारे शरीर को सिर की ओर सरकाते हुये इतना आगे बढ़ो कि शिश्न तथा अण्डकोश पीछे की ओर चले जायें, ताकि पुरुष की बाह्य जननेन्द्रियों पर, इस आसन को करते हुये, लेश मात्र भी दबाव प्रतीत न हो, तब दोनों पैरों को पीठ की ओर झुका कर, और दोनों भुजाओं को पीठ की ओर फैलाकर, दोनों हाथों से दोनों पैरों की गांठों (Ankles) को इस प्रकार दृढ़ पकड़ो, कि हाथों की अंगुलियां बाहिर की ओर से, और अंगूठे भीतर की ओर से दोनों गांठों के ऊपर लिपट जायें। ( प्रथम आकार )

तत्पश्चात् दोनों जाहनुओं को जोड़ कर, पैरों को पीछे की ओर तनते हुये धीरे २ ऊपर को उठाओ, और साथ ही ग्रीवा तथा स्कन्धों को आगे की ओर तनते हुए धीरे २ ऊपर को उठाते जाओ, जिससे दोनों बाहु तन जायें, और सिर तथा पैर एक सीध में आ जायें। ( दूसरा आकार )

फिर स्कन्धों तथा पैरों को धीरे २ यथाक्रम आगे तथा पीछे की ओर तनते हुये, छाती तथा जाहनुओं को यथासंभव भूमि से ऊपर उठायें, जिससे सारा शरीर धनुष के समान तन जाये, और शरीर का भार उदर के नीचे के भाग पर रहे, इस में यह भी ध्यान रखा जाये, कि प्रत्येक पैर, बाहु तथा स्कन्ध परस्पर

एक दूसरे की सीध में रहें, ताकि शरीर के दोनों ओर एक समान दवाव पड़े, टांगें तथा बाहु एक रेखा में रहें और सिर पैरों की सीध में हो, अन्यथा इस के नित्य अभ्यास से शरीर में व्यङ्ग दोष पैदा होने का भय है। (अन्तिम आकार )

फल—इस आसन में पर्शुकाओं सहित पसलियों तथा पृष्ठ-वंश के मोहरों की गति पश्चिमोत्तानासन के विरुद्ध होती है, और इनको दूसरे प्रकार से तनने का अवसर मिलता है, उदर की पेशियों पर भी इससे गहरा प्रभाव पड़ता है, स्कन्धों, पीठ तथा कटि के व्यङ्ग दोष धीरे २ दूर होने लगते हैं, इस से शरीर सडौल बनता है।

सूचना—इस आसन में आरम्भ में यदि जान्हु मिलाकर ऊपर न उठाये जा सकें, तो उनकों पृथक करके उठाया जाये।

## उप-आसन

### ( पांचवें धनुरासन के पीछे )

विधि—धनुरासन (५) करने के पीछे टांगों को फैलाते हुये और पांव की अंगुलियों को भीतर मोड़ कर उदर पर लेटे रहो, और कोहनियों को मोड़ कर सीधा कन्धों के समीप रखते हुये हाथों के तलवों को भूमि पर टिका दो, ( यह आकार प्रायः दण्ड निकालने के समय होता है )। शरीर को हाथ की हथेलियों तथा पैरों की अंगुलियों के बल पर धीरे २ ऊपर को उठाते हुये

बाहुओं को सीधा खड़ा कर दो, तब कटि प्रदेश को पीछे लेजाते हुये एड़ियों को भूमि के साथ लगाने का यत्न करो। ( अन्तिम आकार )। तत्पश्चात् उसी प्रकार वापस आते हुये उदर पर लेट जाओ और फिर शवासन करो।

सूचना—शरीर को ऊपर उठाते हुये पहिले कटि-प्रदेश को उठाने के साथ २ कन्धों को उठाओ और वापस आते हुये बाहुओं को सीधा करके पहिले कन्धों को झुकाने के साथ २ कटि प्रदेश को नीचे लेजाओ, उस अवस्था में कोहनियां तथा मुड़े हुये बाहु भीतर की ओर शरीर के साथ लगे रहें।

**फल**—यह उपासन शरीर पर विरुद्ध प्रभाव डालते हुये धनुरासन के द्वरा पैदा होने वाली जडता अथवा वेदना को दूर करता है, यह उदर पर गहरा प्रभाव डालते हुए बाहुओं, पीठ तथा टांगों को पूरा २ तनने का अवसर देता है।

## ७. चक्र-आसन

**विधि**—पीठ के आधार पर लेट कर, दोनों जाहुओं को ऊपर उठाते हुए, पैरों के तलवों को भूमि पर टिका कर, भीतर की ओर खींचते हुए, दोनों एड़ियों को दोनों चूतड़ों के साथ मिला दो, और दोनों कोहनियों को मोड़ कर हाथों की तलियों को सिर के दोनों ओर भूमि पर टिका दो। ( प्रथम आकार )

तब हाथों तथा पैरों की अंगुलियों को अपने स्थान पर स्थित रखते हुए, पीठ को ऊपर उठाते हुए, जाहुयों को

आगे की ओर झुका कर भूमि पर स्थित कर दो। ( दूसरा आकार )

तत्पश्चात् जानुओं तथा शरीर के पूर्वभाग को ऊपर उठाते हुए, पीछे की ओर ले आओ, और साथ ही भुजाओं को ऊपर उठाते हुए सीधा खड़ा कर दो, किन्तु पैर तथा हाथ अपने पूर्व स्थान से विचलित न हों ( अन्तिम आकार )

इस के पीछे आरम्भिक दशा में आकर शवासन करो।

फल—इस आसन में टांगों, भुजाओं तथा पीठ की पेशियों, अस्थियों तथा जोड़ों और पृष्ठ-वंश के मोहरों, छाती तथा उदर पर दबाव डाला जाता है, और यह आसन कटि इत्यादि पर पड़े हुए गहरे से गहरे हानिकारक दबाव तथा वेदना को दूर करेगा।

## ८. महा मुद्रा

विधि—भूमि पर बैठकर बायीं टांग को फैला दो, और दायीं टांग के जान्हु को मोड़ कर, दायीं एड़ी को गुदा के मूल में जमाते हुये, दायें पैर के तलवे को बायीं जांघ से भिड़ा दो, दोनों भुजाओं को फैलाते हुये, दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे के बीच में डालकर, दोनों हाथों को बायें पैर के तलवे पर जमा दो। ( प्रथम आकार )

तत्पश्चात् बायें पैर को धीरे २ पूर्ण मात्रा में तन दो, और सिर को धीरे २ भीतर की ओर झुकाकर यथासंभव छाती की

ओर लेजाते हुये, बायें जाह्नु से ऊपर की ओर टिका कर, इस को भीतर की ओर झुकाओ, जिस से टांगें, बाहु तथा पीठ पूर्ण रीति से तन जायें। ( अन्तिम आकार )

इस अवस्था में कुछ ठहर कर धीरे २ शरीर को ढीला करते हुये पूर्व दशा में आजाओ, इसी प्रकार दायीं टांग को फैलाकर, और बायें पैर के तलवे को दायीं जंघा से भड़ा कर, दूसरी बार करो, अन्त में यथापूर्व शवासन करो।

**नाम**—इस आसन में चूंकि शरीर के सब अङ्गो को पूर्ण रीति से तनते हुये, उदर पर अत्यन्त गहरा दबाव डाला जाता है, और इस का प्रभाव सारे शरीर पर शेष सब मुद्राओं से अधिक पढ़ता है, इस लिये इस को महा-मुद्रा अर्थात् बड़ी मुद्रा कहते हैं।

**फल**—इस से पृष्ठ-वंश के मोहरों को पूर्ण मात्रा में ऊपर की ओर तनने और नीचे की ओर कुछ झुकने का पूरा २ अवसर मिलता है, जिस से पृष्ठ-वंश के नाडी-केन्द्र अधिक रक्त प्रवाह को आकर्षण करते हैं, इसका कल्याणकारी विशेष प्रभाव फुफ्स, लीहा, आमाशय, आंतों तथा बड़े-नल पर पड़ता है, अस्थियों तथा ऐच्छिक पेशियों में तान क्रिया के होने तथा दबाव पड़ने से, इन की लचक की स्थिरता तथा वृद्धि होती है।

---

# १. पूर्वोत्तानासन

विधि—टांगों को फैलाते हुये पीठ पर लेट कर, भुजाओं को स्कन्धों की सीध में, टांगों की दोनों ओर सीधे फैला कर, हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिलाते हुए, हाथों की तलियों को भूमि पर टिका दो। (पूर्वोत्तान आसन, प्रथम आकार)

टांगों तथा पैरों को परस्पर मिलाते हुए, बाहिर की ओर धीरे २ पूर्ण रीति से तन कर, अत्यन्त धीरे २ विना लेशमात्र हिचकोला देने के, एड़ियों को अत्यन्त धीरे २ ऊपर उठाना आरम्भ करो, और टांगों को पूर्वोत्तानासन, के दूसरे आकार में ले आओ। (पूर्वोत्तानासन, दूसरा आकार)

इसी प्रकार टांगों को धीरे २ ऊपर ऊठाते हुए इनको सीधा करके भूमि के साथ सम-कोण बना दो। (पूर्वोत्तानासन, तीसरा आकार)

टांगों को इसी अवस्था में रख कर भुजाओं तथा स्कन्धों के आधार पर धीरे २ कटि तथा पीठ को ऊपर उठाते हुए, टांगों और पीठ को एक सीध में ले आओ। (पूर्वोत्तानासन, चौथा आकार)

इसी प्रकार पैरों तथा टांगों को तनते हुए, धीरे २ इन को सिर की ओर झुकाते जाओ। (पूर्वोत्तानासन, पांचवां आकार)

तब पैरों तथा टांगों को यथा-सम्भव और तन कर, इन को सिर की ओर धीरे २ झुकाते हुए, पैरों की अंगुलियों को भूमि पर टिका कर जितना हो सके सिर से परे सरकाने की चेष्टा करो। ( पूर्वोत्तानासन, अन्तिम आकार, इस में बाहु तथा पैर भूमि पर टिके हुए हैं )

इस पूर्ण तान की अवस्था में कुछ क्षण स्थिर रह कर, यथाक्रम धीरे २ उसी प्रकार तान की अवस्था में एक आकार से दूसरे आकार में वापस आते हुए, अन्त में प्रथम आकार में आजाओ, तत्पश्चात् यथापूर्व शवासन करो।

**नाम**—इस आसन में शरीर की पूर्वी अर्थात् भीतर के ओर की प्रायः सब पेशियां प्रभावित होती हैं, और शरीर के पूर्व-भाग को आरंभ में अत्यन्त तनने का अवसर मिलता है, इस लिए मैंने इस को पूर्वोत्तानासन का नाम दिया है, प्रायः यह हलासन के नाम से प्रसिद्ध है।

**फल**—पहिले तीन आकारों में पर्शुकाओं सहित पसलियों, वक्षस्थल व उदर की पेशियों, कटि प्रदेश, पृष्ठ वंश के मोहरों तथा पीठ की पेशियों पर अत्यन्त गहरा दबाव पड़ता है, और इन को तनने का अवसर प्राप्त होता है, भिन्न २ नाड़ी-केन्द्रों वृक्क-ग्रन्थियों, डिम्ब ग्रन्थियों, तथा शुक्र-ग्रन्थियों पर भी प्रभाव पड़ता है, चौथे आकार में भुजाओं तथा स्कन्धों की पेशियों व अस्थियों पर गहरा दबाव पड़ता है, चौथे तथा पांचवें आकार में पृष्ठ-वंश के पृष्ठ-देशीय बारह मोहरों ( Twelve Dorsal-

vertebrae ) की नीचे से ऊपर को तान क्रिया होती है, अन्तिम आकार में ग्रीवा के सात मोहरे ( Servical-vertebra ), सुषुम्ना-शीर्षक ( Medulla Oblongata ), तथा चुल्लिका व उपचुल्लिका ग्रन्थियां प्रभावित होती हैं, वापस लौटते समय उपरोक्त भागों पर दूसरी प्रकार से प्रभाव पड़ता है।

मनुष्य की अवस्था तथा रोग के अनुसार इस आसन की विधि में कुछ परिवर्तन करने से हर्निया, हृदय, जिगर तथा प्लीहा के रोगों की निवृत्ति हो सकती है, उदर के विकार, विनिद्रा का रोग तथा नाड़ी मण्डल की निर्बलता (Nerve-depression), इत्यादि रोग दूर होते हैं, मोटापे के रोग को धीरे २ लुप्त करने में भी यह आसन सहायता देता है, इन के अतिरिक्त वीर्य-पतन तथा मासिक-स्राव इत्यादि दोषों को निवृत्त करता है, और ओज को बढ़ाता है।

## उप-आसन

### ( पूर्वोत्तानासन के पश्चात् )

**विधि**—पूर्वोत्तानासन के अन्त में प्रथम आकार में लेटे हुये बायें हाथ की मुट्ठी बांध कर बाहु के अगले भाग को कोहणी पर सीधा खड़ा कर दो, टांगों तथा पैरों को तनकर भूमि से लेश मात्र उठाकर, बायीं ओर जितना ले जासको लेजाओ, किन्तु इस अवस्था में दायां बाहु और कटि-प्रदेश

अपने २ स्थान पर दृढ़ टिके रहें। ( उप आसन, अन्तिम आकार )

तत्पश्चात् धीरे २ पैरों को अपने स्थान पर लाकर दायें हाथ की मुट्ठी बांध कर उसी प्रकार दायीं ओर पैरों को ले जाओ, और धीरे २ आरम्भक दशा में आकर शवासन करो।

फल—इस से कटि-प्रदेश की पेशियों को दायीं व बायीं ओर गति देकर, पूर्वोत्तानासन द्वारा पड़े हुये दबाव के हानिकारक प्रभाव की सम्भावना नहीं रहती, कटि में जड़ता नहीं आने पाती।

सूचना—इस आसन का अभ्यास करते हुये, यह ध्यान रखें, कि दोनों बाहु अपने स्थान से विचलित न हों, और दोनों टांगें परस्पर मिली रहें, और यदि सिर की ओर नीचे टांगें लेजाते हुए कठिनाई प्रतीत हो, तो रेचक करते हुए इनको नीचे ले जाना सुगम होगा।

## १०. मत्स्येन्द्रासन (१)

विधि—बायीं टांग को फैला कर भूमि पर बैठ जाओ, और दायीं टांग को मोड़ कर, दायें पैर की एड़ी को बायीं जांघ के मूल में और तलवे को उरु-देश पर भीतर की ओर टिका-दो, दायें हाथ को दायें जाहनु के समीप भूमि पर, और बायें

हाथ को बायें जाहु पर रख दो। (मत्स्येन्द्रासन प्रथम आकार)।

बायें पैर को भीतर की ओर लाते हुये, जाहु को ऊपर उठा कर, बायें पैर की गांठ के समीप दायें हाथ से पकड़ो, और दूसरे आकार के समान स्थित हो जाओ। ( मत्स्येन्द्रासन, दूसरा आकार )

बायें पैर को दायें हाथ से उठा कर, बायें जाहु को बायें हाथ से दबाते हुये, बायें पैर को दायें जाहु के ऊपर की ओर से लाकर, एड़ी को भूमि पर धर दो, साथ ही यह ध्यान रहे कि दायीं एड़ी अपने स्थान से विचलित न होने पाये। (मत्स्येन्द्रासन, तीसरा आकार)

तत्पश्चात् बायें हाथ को बायें जाहु से उठा कर, दायें बाहु को बायें जाहु के ऊपर की ओर से लाते हुये, दायें हाथ से दायें जाहु को दृढ़ पकड़ें, और बायें बाहु को पीठ की ओर से लाते हुये, बायें हाथ की तली को दायें उरु के मूल भाग पर टिका दें, फिर शरीर के पूर्व भाग को पृष्ठ-वंश के मोहरों सहित ऊपर की ओर तनते हुये, सिर तथा ग्रीवा को ऊपर तन कर, सिर तथा स्कन्धों को धीरे २ बायीं ओर घुमाते हुये, पीठ को जितना हो सके, बायीं ओर घुमायें और बायें बाहु को आगे सरका कर, बायें हाथ को यथासम्भव उरु के भीतर की ओर ले जायें, और शरीर को पूर्ण तान की अवस्था में स्थित करें। ( मत्स्येन्द्र, अन्तिम आकार, पृष्ठ का दृश्य )

इस तान की अवस्था में कुछ क्षण स्थित रह कर यथाक्रम धीरे २ शरीर को ढीला कर के, बाहु तथा टांगों में परिवर्तन करते हुये, इस को दूसरी बार करें, इसमें सिर तथा स्कन्धो की गति दायीं ओर होगी। ( मत्स्येन्द्रासन अन्तिम आकार, उदर का दृश्य )

---

## १०. मत्स्येन्द्रासन (२)

मत्स्येन्द्रासन का अभ्यास एड़ी को उरु के मूल में ऊपर की ओर, और पैर के तलवे को उदर के सन्मुख स्थिर करके भी किया जाता जाता है। ( मत्स्येन्द्र (२), चौथा आकार, सामने का दृश्य, तथा अन्तिम आकार, पृष्ठीय-दृश्य )

**फल**—इस आसन में पेशियों तथा अस्थियों की भिन्न २ गतियों का उद्देश पृष्ट-वंश को ऊपर की ओर तन कर दायीं तथा बायीं ओर मोड़ते हुये, नाडी-केन्द्रों की शक्ति को उन्नत करना है, इस से नाड़ियों की निर्बलता दूर होकर ओज की वृद्धि होती है, यह आसन स्कन्धों का व्यङ्ग दोष दूर करने में सहायता करता है, और पाचक-विभाग तथा सीहा को भी प्रभवाति करता है, कशेरुकाओं सहित पसलियों को दायीं और बायीं ओर तनता है, यकृत ( जिगर ) पर भी इस का गहरा प्रभाव पड़ता है।

**नाम**—इस आसन को योगाचार्य मत्स्येन्द्र ने स्त्री

पुरुषों के कल्याण के लिये उद्धृत किया है, इस लिये इस को मत्स्येन्द्रासन का नाम दिया गया है।

सूचना—मत्स्येन्द्रासन (२) का अभ्यास बहुत कठिन प्रतीत हो, तो केवल मत्स्येन्द्रासन (१) का ही नित्य अभ्यास करना चाहिये।

---

## ११. मत्स्यासन (१)

विधि—भूमि पर बैठ कर बायें पैर को दायीं जांघ के ऊपर, और दायें पैर को बायीं जांघ के ऊपर इस प्रकार टिकाओ, कि पैरों के तलवे उदर की ओर और एड़िया जांघों के मूल में स्थित हों, तब दायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को और बायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को इस प्रकर दृढ़ पकड़ो, कि प्रत्येक हाथ की अन्त की तीन अंगुलियां पैरों के प्रत्येक अंगूठे के गिर्द बाहिर की ओर से लिपट जायें, और प्रत्येक हाथ का अंगूठा तथा उस के साथ की अंगुलि पैर के प्रत्येक अंगूठे के बाहिर की ओर फैली रहें, (मत्स्यासन (१), प्रथम आकार)।

पीठ पर लेट कर धीरे २ दोनों कोहनियों को झुकाते हुये भूमि पर टिका दो। (मत्स्यासन (१), दूसरा आकार)

धीरे २ स्कन्धों को ऊपर उठाते हुये सिर को भीतर की ओर खींच कर वक्षस्थल को जितना हो सके ऊपर की ओर

उठाओ, और साथ ही धीरे २ जानुओं को नीचे झुकाते हुये भूमि पर लगा दो। ( मत्स्यासन (१), अन्तिम आकार )

इस प्रकार पूर्ण तान की अवस्था में कुछ क्षण रह कर, धीरे २ यथाक्रम अङ्गों को ढीला करते हुये शवासन करो।

---

## मत्स्यासन (२)

पूर्वोक्त प्रकार से टाँगों की पालथी लगाते हुये भूमि पर लेट कर, दोनों बाहुओं को सिर के ऊपर की ओर लेजा कर दायें हाथ से बायें बाहु के भुजादण्ड को और बायें हाथ से दायें बाहु के भुजादण्ड को इस प्रकार दृढ़ पकड़ो, कि प्रत्येक हाथ की अंगुलियां तथा अंगूठे प्रत्येक भुजा के गिर्द बाहिर की ओर से लिपट जायें, और जानु कुछ झुके हुये हों। ( मत्स्यासन (२), प्रथम आकार )

तब भुजाओं को धीरे २ पीछे की ओर तनते हुये, जानुओं को नीचे झुकाते हुये भूमि पर लगा कर पृष्ठ-वंश को जितना हो सके ऊपर की ओर तन दो। ( मत्स्यासन (२), अन्तिम आकार )

इस तान की अवस्था में कुछ क्षण स्थित होकर धीरे २ यथाक्रम शरीर को ढीला करते हुये, यथापूर्व शवासन का अभ्यास करें।

दोनों मत्स्यासनों को, टांगों को इस प्रकार बदल कर भी

करना उचित है, कि पहले दायें पैर को बायें उरु पर, और फिर इस के उपर की ओर से बायें पैर को दायें उरु पर स्थित किया जाये ।

फल—इस आसन में पृष्ठ-वंश के मोहरों तथा पसलियों को एक ही समय में ऊपर तथा नीचे की ओर तनने का अवसर प्राप्त होता है, उदर प्रदेश पर भी दोनों प्रकार से दबाव पड़ता है, चुल्लिका तथा उपचुल्लिका ग्रन्थियां, और सुषुम्ना-शीर्षक भी उस से प्रभावित होते हैं, जिस से नाडी-शक्ति की वृद्धि व कब्ज़ी इत्यादि रोगों की निवृत्ति, तथा शरीर में लचक की स्थिरता होती है ।

नाम—'मत्स्य'' संस्कृत में मछली को कहते हैं, इस आसन को यह नाम इस लिये दिया गया है, कि मनुष्य इस आसन की अवस्था में मछली के आकार में जल में तैरते हुये मनुष्य के सदृश प्रतीत होता है।

——

## प्रथम उप-आसन

### ( मत्स्य के पश्चात् )

**विधि**—मत्स्यासन के समान टांगों की पालथी लगा कर, दोनों बाहुओं को पीठ की ओर लेजाकर, दोनों हाथों की तलियों को बाहिर की ओर रखते हुये, इन को एक दूसरे

के ऊपर रख दो, और कमर के मध्य में टिका कर भूमि पर पीठ की ओर लेट जाओ। (प्रथम उप-आसन, प्रथम आकार)—

तब धीरे धीरे जाहुओं को नीचे झुकाते हुये भूमि पर लगा दो। (प्रथम उपासन, अन्तिम आकार)

इस अवस्था में जाहुओं को धीरे २ नीचे से दायीं ओर ऊपर लेजाते हुये, बायीं ओर को घुमा कर ऊपर से नीचे की ओर लेजायें, और इसी प्रकार बायीं ओर से ऊपर को घुमाकर दायीं ओर नीचे लेजायें, और धीरे २ शरीर को ढीला करते हुये शवासन करें।

फल—मत्स्यासन द्वारा कटि प्रदेश पर नित्य दबाव पड़ते रहने से वहाँ जडता प्रतीत होने लगती है, इस उपासन से कटि को गति देने से इस का भय नहीं रहता।

---

## दूसरा उप-आसन

### ( मत्स्य के पश्चात् )

विधि—मत्स्यासन (२) के समान सिर की ओर भुजाओं को हाथों से पकड़ते हुये, पीठ की ओर लेट कर, जाहुओं को सीधा खड़ा कर के, टांगों के नीचे के भाग को बाहिर की ओर भूमि से ऊपर सीधा फैला दो। ( दूसरा उप-आसन प्रथम आकार )।

तब टांगों को शीघ्रता पूर्वक वेग से बाहिर को फैलाते हुये, पैरों को भूमि से स्पर्श न करने दो। ( दूसरा उप-आसन, अन्तिम आकार )।

फिर टांगों को भीतर की ओर वेग से लाते हुये, प्रथम आकार में आजाओ, इसी प्रकार तीन बार कर के शवासन करो।

फल—यह उप आसन मत्स्यासन द्वारा कटि तथा पीठ पर पड़े हुमे दबाव को निवृत्त करने में सहायता करता है।

———

## १२. उड्डियान-बन्ध

विधि—पैरों को पृथक् रखते हुये सीधे खड़े हो जाओ, और पूरक के पश्चात् अन्तर-कुम्भक करते हुए, तुरन्त ही हाथों को जाहुओं से कुछ ऊपर इस प्रकार स्थित करो, कि हाथों के अंगूठे भीतर की ओर, और अंगुलियां बाहिर की ओर दृढ़ लिपट जायें। ( प्रथाकार, पूरक के अनन्तर )

तब धीरे २ श्वास को बाहिर निकालते हुये, यथासम्भव पूर्ण मात्रा में रेचक करके वाह्य कुम्भक करो, और तुरन्त ही यथासम्भव उदर को भींतर की ओर खींच लो। ( अन्तिम आकार, रेचक के अनन्तर )

इस अवस्था में उदर गोलाकार रूप धारण कर लेगा, किसी प्रकार का लेशमात्र कष्ट प्रतीत न करते हुये, यथा-शक्ति कुछ

तथा इस अवस्था में स्थिर रह कर, तुरन्त सीधे खड़े होकर, धीरे २ पूरक करके शवासन में स्थित हो जाओ।

**नाम**—उड्डियान के अर्थ संस्कृत में ऊपर उड़ने के हैं, इस आसन में पक्षी के उड़ने के समान उदर तुरन्त भीतर को चला जाता है, और इस की पेशियां पूर्ण मात्रा में आकुञ्चित होकर उदर-प्रदेश पर अत्यन्त गहरा दबाव डालती हैं, इसलिये यह आसन उड्डियान-बन्ध कहलाता है।

**फल**—इस का प्रभाव आन्तों तथा बड़े नल पर भीतर की ओर अत्यन्त गहरा पड़ता है, कबज़ी इत्यादि उदर के रोग इस से दूर होते हैं, वक्षउदर-मध्यस्थ-पेशी (Diaphram) के अत्यन्त ऊपर उठने के कारण वक्षोस्थि, तथा कशेरुकाओं सहित पसलियों पर ऊपर की ओर गहरा दबाव पड़ता है, कण्ठ तथा मुख की पेशियां आकुञ्चित होकर अस्थियों को प्रभावित करती हैं।

**सूचना**—यह बन्ध भिन्न २ अवस्थाओं में किया जा सकता है, किन्तु सब से उत्तम प्रभाव उपरोक्त अवस्था में ही पड़ता है।

---

## १३. नौली

**विधि**—पैरों को परस्पर जोड़ कर पूर्वोक्त विधि के अनुसार उड्डियान बन्ध की अवस्थ में सिर को कुछ नीचे झुका कर उदर

के दोनों ओर की पेशियों को ढीला कर के, उदर पर नीचे की ओर तथा बाहिर की ओर एक साथ दबाव डालते हुये, नल को ऊपर उठाओ। ( नौली, अन्तिम आकार )

उड्डियान करके सिर को कुछ नीचे की ओर झुकाने पर स्वयमेव उदर की दोनों ओर की पेशियां ढीली होकर मध्यम भाग ऊपर को उभरने लगेगा, उस समय थोड़ा सा यत्न करने पर नल पूर्ण रीति से ऊपर उठेगा, अर्थात् उदर का मध्यम भाग ऊपर को उभर आयेगा और दोनों ओर भीतर धुस जायेंगे। इस को **मध्यम-नौली** कहते हैं, जब इस में सफलता प्राप्त हो जाये, तो फिर नल को दायीं से बायीं ओर जितनी बार हो सके घुमाओ इसी प्रकार बायीं से दायीं ओर नल को घुमाओ, यह अन्त की दोनों गतियां वाम तथा दक्षिण नौली कहलाती हैं।

**नाम**—इस क्रिया में चूंकि नल को घुमाया जाता है, इस लिये इस को **नौली** का नाम दिया गया है।

सूचना—प्रत्येक नौली-क्रिया उतने समय तक करते हुये, जितने समय तक बाह्य-कुम्भक सुगमता पूर्वक किया जा सके, आरंभ में प्रत्येक बार शवासन करना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा, जब इस क्रिया में पूर्ण सिद्ध प्राप्त हो जाये, तो प्रत्येक प्रकार की नौली-क्रिया एक दो बार सहित-कुम्भक प्राणायाम करने के पश्चात रेचक करके करनी चाहिये, और तीनों प्रकार की क्रियाओं के पीछे यथापूर्व शवासन किया जाये।

फल——इस से उदर की पेशियों को चारों ओर गति करने का अवसर मिलता है, और आन्तों पर इस का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, पुरानी से पुरानी कब्ज़ी, तथा अजीर्ण इत्यादि उदर के रोग दूर होने लगते हैं, जिगर, प्लीहा, क्लोम-ग्रन्थियों, वृक-ग्रन्थियों, मासिक-स्राव तथा डिम्ब-ग्रन्थियों के दोष निवृत्त होते हैं।

---

## १४. मयूरासन

विधि——जाहुओं के आधार पर भूमि पर सीधे बैठ कर भुजाओं को फैलाते हुये दोनों हाथों को मिला कर, तलियों को भूमि पर रक्खो। ( मयूरासन, प्रथम आकार )

शरीर के पूर्व-भाग को कुछ झुकाते हुये, कोहनियों को भीतर की ओर झुका कर परस्पर मिलाओ, और उदर पर नाभि से जितना हो सके नीचे की ओर टिका दो। ( मयूरासन, दूसरा आकार )

सिर को नीचे झुकाते हुये ललाट को भूमि पर लगा दो, और यह ध्यान रक्खो कि कोहिनियां, हाथ तथा बाहु परस्पर पूर्ण रीति से मिले रहें, इस अवस्था में कटि को कुछ ऊपर उठा कर जाहुओं को कुछ आगे बढ़ा कर, मिली हुई कोहनियों को यथासंभव नाभि से और नीचे ले जाओ। ( मयूरासन, तीसरा आकार )

शरीर को सिर तथा हाथों के आधार पर रखते हुये, जानुओं तथा पैरों को भूमि से कुछ ऊपर उठाओ। ( मयूरासन चौथा आकार )

दोनों, भूमि से उठे हुये, जानुओं को पीछे की ओर सरकाते हुये और दोनों पैरों को मिला कर ऊपर की ओर उठते हुये टांगों, तथा शरीर के पूर्व-भाग को पांचवें आकार में ले जायें। ( मयूरासन, पांचवां आकार )

पैरों को नीचे झुकाते हुये टांगों को बाहिर की ओर फैला कर, पैरों की अंगुलियों को भीतर मोड़ कर भूमि पर टिका दें। ( मयूरासन, छटा आकार )

सिर को भूमि से कुछ ऊपर उठा कर आगे को बढ़ाते हुये इतना आगे ले जायें, कि पैरों की अगुलियां बिना अपने स्थान से सरकने के बाहिर की ओर फैल जायं, प्रकोष्ठ (Fore-arm) भूमि पर सीधे खड़े हो जायें, और शरीर का पूर्व-भाग तथा उत्तर-भाग कोहनियों पर तुल जायें, तब अत्यन्त धीरे २ पैरों को ऊपर उठा कर सारे शरीर को तन कर हाथों के आधार पर आकाश में खड़ा कर दें। ( मयूरासन अन्तिम आकार—इस चित्र में हाथ भूमि पर टिके हुये हैं )।

इस प्रकार पूर्ण तान की अवस्था में कुछ क्षण स्थिर रह कर, यथाक्रम शरीर को ढीला करते हुये, यथापूर्व शवासन करो।

सूचना—इस आसन को करते हुये, जितना धीरे २ शरीर को गति दी जायेगी, उतना ही इसे सुगमता पूर्वक किया जा सकेगा, अन्यथा मनुष्य शरीर को स्थिर रखने में असमर्थ होगा, प्रथम आरंभकाल में श्वास शीघ्रता से आने जाने लगेगा, और गहरा नहीं होगा, किन्तु अभ्यास करते हुये अपने अधिकार में आजायेगा।

नाम——इस आसन में शरीर कुछ मयूर के, पुच्छ सहित टांगों पर खड़े होने के आकार के सदृश प्रतीत होता है, इस लिये इस को **मयूरासन** का नाम दिया गया है।

फल——शरीर पर सामान्य प्रभाव के अतिरिक्त इस से आन्तों तथा बड़े-नल पर शेष सब आसनों से अधिक प्रभाव पड़ता है, नाभि-ग्रन्थियों पर यह आसन अत्यन्त गहरा दबाव डालता है, इस के यथाविधि और यथायोग्य प्रयोग से अत्यन्त पुरानी तथा भयानक कबज़ी इत्यादि उदर के रोग दूर होते हैं, पृष्ठ-वंश के मोहरों तथा पसलियों पर नीचे तथा ऊपर की ओर यथाक्रम गहरा दबाव पड़ता है, नाडी-केन्द्रों तथा सारे शरीर में फैले हुये नाडी-सूत्रों को प्रभावित करता है, जिस से नाडी-शक्ति की वृद्धि होती है।

———

# १५. वृक्षासन

विधि——दोनों टांगों पर सीधे खड़े होकर, दायीं टांग को मोड़ कर, दायें पैर की एड़ी को बांयीं जांघ के मूल में, और तलवे को जांघ पर भीतर की ओर टिका दो, सन्मुख दृष्टि रखते हुये दोनों भुजाओं को मोड़ कर, दोनों हाथों की तलियों तथा अंगुलियों को एक दूसरे के ऊपर जमा कर, हृदय के समीप छाती के मध्य में स्थित करो, जब कि हाथों की अंगुलियां बाहिर की ओर फैली रहें। ( वृक्षासन, प्रथम आकार )।

रेचक कर के धीरे २ पूरक करते हुये हाथों तथा भुजाओं को ऊपर उठाते हुये, दोनों कोहनियों को एक सीध में ले जाओ, और पूरक कर के अन्तर-कुम्भक की अवस्था में हाथों की तलियों तथा अंगुलियों को परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध दबाओ। ( वृक्षासन, अन्तिम आकार )।

इस तान की अवस्था में इतने तया ठहरो जिस से किसी प्रकार लेशमात्र भी कष्ट प्रतीत न हो, फिर धीरे २ भुजाओं को ढीला करते हुये रेचक करके बाह्य-कुम्भक करो, और यथा-पूर्व भुजाओं को तन कर उसी प्रकार परस्पर हाथों पर दबाओ डालते हुये यथाशक्ति इस अवस्था में ठहरे रहो, फिर धीरे २ पूरक करते हुये भुजाओं को ढीला कर के, दोनों टांगों पर खड़े हो जाओ, और इस आसन को उपरोक्त प्रकार से बायें पैर के

तलवे को दायें उरु पर धर कर, पूर्व रीति से दूसरी बार करो, अन्त में यथा पूर्व शवासन करो।

सूचना—प्रथम आरम्भ करने के समय हाथों पर नाम-मात्र दबाव डालो, अन्यथा सिर में चक्कर आजाने का भय है, धीरे २ अभ्यास द्वारा अधिक दबाव सहन करने की शक्ति बढ़ती जायेगी, किन्तु कुछ क्षण से अधिक कभी भी दबाव स्थिर रखने की चेष्टा न की जाये, अन्यथा मस्तिष्क हृदय तथा फुफुसों केलिये हानिकारक सिद्ध होगा, यदि किसी समय इस का अभ्यास करते हुये, सिर में चक्कर आजाये, तो उसी क्षण शवासन में स्थित हो जाओ।

**नाम**—चूंकि इस आसन में एक टांग पर खड़े होने का आकार वृक्ष के खड़े रहने के सदृश प्रतीत होता है, इसलिये इस का नाम **वृक्षासन** रखा गया है।

**फल**—इस आसन में फुफुस तथा हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ने से वहां रक्त की मांग अधिक पैदा होती है, जिस से इन की शक्ति तथा ओज की वृद्धि होती है, इस आसन का विधि-पूर्वक अभ्यास करने वाला, हृदय स्पन्द के एक दम बन्द हो जाने से कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता, और इन में किसी प्रकार का रोग पैदा नहीं हो सकता, यदि इन में कुछ निर्बलता हो तो वह भी धीरे २ दूर हो जाती है।

———

# सर्वाङ्ग-आसन

## ( बाहुओं को दुहरा करते हुये )

विधि—पूर्वोत्तान आसन के समान पैरों को ऊपर उठाते हुये टांगों को कटि-प्रदेश के साथ समकोन (सीधा) खड़ा कर दो, किन्तु टांगों को कुछ ढोला रखते हुये कुछ शीघ्रता से ऊपर उठाओ, ( पूर्वोत्तान-आसन तीसरा आकार )।

तब बाहुओं को पूरा २ तन कर शरीर के पूर्व भाग को धीरे २ ऊपर उठाते हुये पैरों को सिर की ओर झुकाते हुये पूर्वोत्तान-आसन के पांचवें आकार में आजाओ, और चौथे आकार को छोड़ दो, जब पीठ सीधी खड़ी हो जाये तो कोहनियों पर बाहुओं को भीतर मोड़ते हुये हाथों से पीठ को इस प्रकार सहारा दो कि हाथों की अंगुलियां पीठ की ओर और अंगूठे उदर की ओर रहें, कोहनियों को भीतर की ओर लाते हुये हाथों को यथाशक्ति नीचे कन्धों की ओर लेजाने का यत्न करो, तब टांगों को पीठ की सीध में करो और साथ ही पीठ को नीचे झुकने न दो।
इस अवस्था में ठोडी छाती के साथ स्पर्श करेगी। और टांगें तथा पीठ एक सीध में होंगे। ( अन्तिम-आकार-बाहुओं को मोड़ते हुये )।

इस अवस्था में कुछ क्षण स्थित होते हुये उसी प्रकार वापस आजाओ।

———

# सर्वाङ्ग-आसन दूसरा प्रकार

## ( बाहुओं को फैलाकर )

**विधि**—यथापूर्व पैरों को ऊपर उठाते हुये पूर्वोत्तान आसन के तीसरे आकार में आजाओ, तब बाहुओं को फैलाये रखो और कन्धों पर दबाओ डालते हुये और टांगों को यथाशक्ति सीधा उठाते हुये शरीर को तने हुये बाहुओं तथा कन्धों के बल पर सीधा खड़ा करदो। ( अन्तिम आकार-पूर्वोत्तानासन फैले हुये बाहुओं सहित )।

कुछ क्षण इस अवस्था में ठहर कर उसी प्रकार वापस आजाओ।

**नाम**—इस आसन में शरीर के सब अङ्गों का सारा भार भुजाओं पर होने के कारण, इसको सर्वाङ्गासन कहा गया है।

**फल**—इस आसन का विशेष प्रभाव चुल्लिका तथा उप-चुल्लिका ग्रन्थियों पर पड़ने के कारण यौवन को स्थिर रखने तथा नष्ट हुए २ यौवन को पुनः प्राप्त कराने में, इसका बहुत महत्त्व है, पृष्ठ-वंश के मोहरों पर इसके द्वारा नीचे से ग्रीवा की ओर दबाव पड़ता है, जिस से नाड़ी-केन्द्रों की शक्ति वृद्धि को प्राप्त होती है, शुक्र-ग्रन्थियां, गर्भाशय तथा डिम्ब-ग्रन्थियां भी इस से प्रभावित होती हैं, यह स्त्री पुरुषों की नपुंसकता को दूर करने में सहायता करता है, और पाचक विभाग की शक्ति को उन्नत

करता है, बांझपन तथा डिम्बग्रन्थियों, गर्भाशय और मूत्राशय इत्यादि के रोग इस से निवृत्त होने लगते हैं।

———

## उप-आसन

### ( प्रत्येक सर्वाङ्गासन के पश्चात् )

टांगों तथा बाहुओं को तनते हुये पीठ पर लेट जाओ, और शिर के निचले भाग को धीरे २ भीतर लाते हुये बाहुओं को कोहिनियों तक तथा पीठ को कटि तक उठाते हुये, टांगों को तने रखो। ( अन्तिम आकार )।

उसी प्रकार वापस आते हुये आरम्भक दशा में आजाओ, फिर शिर को ऊपर उठाते हुये ठोडि को छाती से लगादो, तत्पश्चात् शिर को भूमि से कुछ ऊपर रखते हुये ठोडि को धीरे २ दायीं तथा बायीं ओर गति दो, जिस से ग्रीवा की बायीं तथा दायीं ओर गहरा दबाव पड़े।

**फल**——यह पीठ तथा ग्रीवा पर विरुद्ध दबाव डालकर सर्वाङ्ग-आसन द्वारा पैदा होने वाली कठिनता तथा वेदना को नहीं होनेदेता।

———

# १७. विपरीतकरणी-मुद्रा

## ( शीर्षासन )

विधि—दोनों जाहुओं के आधार पर भूमि पर बैठ कर दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे के बीच में डालकर भूमि पर इस प्रकार खड़ा करो, कि हाथों की तलियां भीतर की ओर खड़ी रहें, और प्रकोष्ठ (Fore-arm) भूमि पर टेढ़ी टिकी हों, तब सिर को नीचे झुकाते हुए इसका पीछे का भाग जुड़े हुए हाथों के मध्य में और ऊपर का भाग भूमि पर टिका दो, और पीठ को सीधा खड़ा कर दो, इस अवस्था में दोनों टांगें जाहुओं पर झुकी हुई, भूमि से ऊपर उठी होंगी, और पैरों की अंगुलियां भूमि पर तिरछी लगी रहेंगी, जब कि टांगें और पैर परस्पर मिले होंगे, और जाहु छाती के साथ स्पर्श कर रहे होंगे। ( विपरीतकरणी मुद्रा, प्रथम आकार, पृष्ठ का दृश्य, तथा पक्ष का दृश्य )।

तत्पश्चात् शरीर के पूर्व भाग को सर्वथा निश्चल रखते हुए धीरे २ पैरों को ऊपर उठाते हुये, एड़ियों को चूतड़ों पर टिका कर, टांगों को दोहरा कर दो। ( विपरीतकरणी मुद्रा, दूसरा आकार )।

फिर दोनों जाहुओं को ऊपर उठाते हुये पैरों को पीठ की ओर ले जाओ। ( विपरीतकरणी मुद्रा, तीसरा आकार )

तब पैरों को ऊपर उठाते हुये टांगों को बिलकुल सीधा

कर दो, जिससे सारा शरीर एक सीध में आजायेगा। ( विपरीत-करणी मुद्रा, अन्तिम आकार )।

इस अवस्था में कुछ क्षण स्थित रह कर यथाक्रम वापस लौटते हुये प्रथम आकार में आजाओ और क्षण भर सिर को भूमि पर रखते हुए, अत्यन्त धीरे २ इसको ऊपर उठाते हुये, पूर्व दशा में आकर शवासन करो।

सूचना—इस आसन को करते हुए नेत्रों को सर्वथा बन्द रखो, आरंभकर्ता यदि पहिले पहिल सिर के अगले भाग को भूमि पर रखेगा, और टाँगों को गति देते हुए शरीर के पूर्व-भाग को लेश मात्र भी हिलने नहीं देगा, तो उस को एक दो दिन में ही सफलता प्राप्त हो जायेगी, आसन में पूर्ण सिद्धि हो जाने के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह पहिले लघु-मस्तिष्क तथा वृहद्-मस्तिष्क की सन्धि के स्थान को, फिर वृहद्-मस्तिष्क के मध्यम भाग तथा अग्र-भाग को बारी २ भूमि पर टिकाते हुए, तीन बार इस आसन को करे, और उतनी ही बार साथ २ शवासन का अभ्यास करे, इस से अत्युत्तम लाभ होगा, अन्त में कम से कम दस मिनट तक इस प्रकार शवासन करे, कि प्रथम आकार में स्थित होकर सिर के उक्त तीनों भागों को बारी २ कुछ क्षण तक भूमि पर रख कर अत्यन्त धीरे धीरे ऊपर को उठाते हुए प्रत्येक बार शवासन करे, उक्त अवस्था में सिर के दायें तथा बायें पक्ष को भी साथ २ क्षण भर भूमि पर टकाने का अवसर देता रहे, इस

के पश्चात् शवासन के बिना किसी दूसरे आसन का अभ्यास हानिकारक सिद्ध होगा।

**नाम**—इस आसन में रक्त का प्रवाह साधारण अवस्था की अपेक्षा विपरीत दशा में अर्थात् सिर की ओर अधिक वेग से होने लगता है, इस लिये इसको विपरीतकरणी मुद्रा का नाम दिया गया है, चूंकि इसमें सिर के आधार पर मनुष्य उलटा खड़ा होता है, इस लिये प्राय: इसको शीर्ष-आसन ही कहा जाता है।

**फल**—इस के द्वारा रक्त का प्रवाह अधिक मात्रा में मस्तिष्क की ओर चलता है, जिससे दोनों मस्तिष्कों की शक्ति तथा ओज में वृद्धि होती है, पिट्युट्री-ग्रन्थि तथा पीनिअल-ग्रन्थि पर इस का पूर्ण उपयोगी प्रभाव पड़ता है, जिससे मनुष्य की शारीरिक पुष्टि तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है, काम-वासना उत्तेजित नहीं होती, स्त्री पुरुषों की उत्पादिक शक्ति की निर्बलता दूर होती है, स्त्रियों का मूर्च्छा का रोग (Hysteria), पागलपन, मिरगी इत्यादि रोगों का धीरे २ नाश होता है, मस्तिष्क की स्मरणशक्ति तथा बुद्धि का विकाश होने लगता है, नेत्रों की दृष्टि बढ़ती है, और कई प्रकार के मस्तिष्क तथा उदर के रोगों की निवृत्ति होती है।

---

# परम-आवश्यक सूचनायें

## योगिक-आहार

(१) योग साधक यदि योगिक-व्यायाम-पद्धति से पूर्ण लाभ प्राप्त करना चाहता है, तो उसे शाकाहारी तथा मिताहारी होना चाहिये।

(२) हठ योग सर्वथा भोजन तथा आहार त्यागने की शिक्षा नहीं देता, प्रत्युत यह इस बात का बलपूर्वक अनुरोध करता है, कि शरीर पूर्ण रीति से कर्म करने के योग्य नहीं होसकता यदि उसका उचित प्रकार से खान पान द्वारा पालन पोषण न किया जाये, और न ही यह अति योजन सेवन करने के पक्ष में है, योग-साधक को हित और मित भोजी होना चाहिये, युक्त-आहार से अधिक से अधिक पोषक-रस प्राप्त इस का धेय है, और यह तभी हो सकता है, जब भोजन को पूर्णतया चबा २ कर खाया जाये जिस से नशास्ता के अंश को खाण्ड में बदलने का अवसर मिले, और भोजन के पीछे प्रायः आध घण्टा वाम-पक्ष पर विश्राम करने से उसकी पचन-क्रिया भलि भान्ति होसके।

(३) मिर्च मसालों तथा दूसरे उत्तेजक पदार्थों को योग में कोई स्थान नहीं, यदि उदर में जठर-अग्नि पूर्ण-मात्रा में विद्यमान है, तो भोजन पचाने के लिये किसी वाह्य-पदार्थों को

सेवन करने की आवश्यकता नहीं, जिन के सेवन करने से शनैः २ पाचक-विभाग के अङ्गों के निर्बल होते जाने से उनके पाचक-रस उत्पन्न करने की शक्ति भी कम होती जाती है।

(४) कोमल ताज़ा शाक, चक्की का पिसा तथा विना छाना आटा, हाथ के छड़े हुये चावल, व दूध, घी, ताज़े फल और दालें योगी का पूर्ण आहार बनाती हैं, बर्फ़ी, पेड़ा, विस्कुट इत्यादि मिठाइयां व दूसरे मशीनों से बने हुये भोज्य पदार्थ यथा मलाई की वर्फ़ व पेस्टरी इत्यादि स्वादिष्ठ लगने वाले पदार्थ सर्वथा त्याज्य हैं।

हाथ की चक्की के पिसे आटे व हाथ के छड़े चावलों में सब ओजस्वी पदार्थ विद्यमान होते हैं, जहां कि मैशीन इन को नष्ट कर देती है, मोटे स्वेद वर्ण के गेहूं से बारीक मुण्डी गेहूं ( जो श्वेत न हो ) अत्यन्त लाभकारी है।

घरों में देवियां प्रायः दालों को जल से धो कर और शाकों (Vegetables) को छील कर उन के छिलके पृथक कर देती हैं, जिन में कि ओज भरा हुआ है, यह बड़ी भूल है. यह छिलके जहां पाचक-क्रिया में सहायता देते हैं, वहां बद्ध-कोष्ठ (कबज़ी) से बचाते और मल शोधन करने में आवश्यक भाग लेते हैं।

दालों को छिलकों समेत यथोचित जल डाल कर, और शाकों को विना छीले व विना लेशमात्र भी जल डाले मन्द-अग्नि पर भरत के मोटे बर्तन में पकाना उचित है, उन में केवल घर के

पिसे हुये नाम-मात्र लवण (नमक) व हल्दी डालने की आवश्यकता है ।

इन में भोजन करने के समय कुछ शुद्ध व ताज़ा घी थोड़ा गर्म करके डालना उचित है, यदि अनाज, शाक तथा फल शुद्ध भूमि में शुद्ध जल द्वारा सींच कर विना खाद डाले या अधिक से अधिक शुद्ध खाद डाल कर पैदा किये जायें, और फल वृक्षों पर पके हुये हों, तो जहां उन का स्वाद भी अत्युत्तम होगा वहां वह अत्यन्त बल शक्ति व ओज देने वाले, व्याधि-नाशक व आयु वर्धक भी होंगे, इन के लिये सब से उत्तम तथा उपयोगी जल कूप तथा वर्षा का सिद्ध होगा ।

(५) योगा—अनुसार एक स्वस्थ मनुष्य को दिन में दो बार भोजन करना चाहिये, सब से उत्तम समय मध्याह्न काल व सायंकाल है, यदि कार्यवश यह कठिन प्रतीत हो, तो अपनी अनुकूलता-अनुसार दोनों काल नियत किये जायें, यदि उदर में कुछ विकार हो, तो दोनों काल भोजन का त्याग लाभकारी सिद्ध होगा, दिन में कुछ बार उष्ण जल का पान करना उपयोगी होगा, यदि शरीर में किसी अपनी भूल से कोई विकार उत्पन्न हो जाये, तो इसके लिये उपवास सब से उत्तम इलाज है, जिस से एकैक ही समाप्त करना उचित नहीं, साथ ही उपवास को आवश्यक समय से अधिक कदापि बढ़ाना नहीं चाहिये, और शारीरिक विकार से मुक्त होने पर नरम व शीघ्र पचने वाला

थोड़ा २ भोजन करते हुये शनैः २ स्वाभाविक दैनिक भोजन सेवन करना ही लाभदायक होगा,

भोजन करने के पीछे दोनों काल मूत्र करना उत्तम होगा, इस से गुर्दों की शक्ति व स्वास्थ्य बना रहता है।

## पान के विषय में

(१) सोडा-वाटर इत्यादि बर्फ़ डाल कर या बर्फ़ में रख कर ठण्डे किये हुये सर्वथा त्याज्य हैं, क्योंकि यह पाचक-क्रिया तथा आत्मीकरण व वहिष्करण में बाधक होते हैं।

(२) मदिरा, तुमाकु, सिगरट, कोको इत्यादि माधक व उत्तेजक पदार्थ स्वस्थ जीवन के लिये अत्यन्त हानिकारक हैं।

(३) भोजन के मध्य में थोड़ा २ करके, और भोजन के एक दो घण्टे पीछे यथावश्यकता जल पान करना उचित है, एकैक जल पान करना ठीक नहीं, दिन में कई बार जल पान किया जाय किन्तु धीरे २ आचमन करते हुये।

(४) रात्रि के समय भोजन से पहिले अथवा पीछे दूध पान करना ठीक नहीं, यदि रात्रि को शयन करने के समय जल पान किया जाये तो प्रातः काल मल-विसर्जन में सुगमता होगी।

## व्यायाम के विषय में

(१) व्यायाम करने के लिये खुला स्थान व खुली वायु होने चाहियें।

(२) प्रातःकाल व्यायाम करने से पहिले स्नान इत्यादि से निवृत्त हो जाना उचित है।

(३) व्यायाम करने से शीघ्र ही पूर्व या पीछे भोजन सेवन नहीं करना चाहिये, भरे हुये उदर से व्यायाम करने से कभी वमन हो जाने वा मूर्छित हो जाने का भी भय है।

(४) आरम्भ करने वाले विशेषतः वृद्ध तथा कठिन शरीर वालों को चाहिये कि सावधानता से इसका अभ्यास करें, यह भी ध्यान रखें कि इस के करने से शरीर में किसी प्रकार का खेद अथवा श्रान्ति न हो, प्रत्युत मनुष्य अपने में प्रसन्नता, बल तथा शक्ति प्रतीत करे।

(५) योगिक व्यायाम करते समय शरीर में किसी प्रकार का क्षोभ न हो।

(६) प्रत्येक आसन में शरीर की गति यथाशक्ति पूर्ण प्रकार से होनी चाहिये, अर्थात् पेशियों को तनते समय इन को पूरा २ तना जाये, और ढीले करते समय इनको पूर्ण रीति से ढीला होने का अवसर दिया जाये, अधूरि गति देने से प्रभावित पेशियां, तन्तु तथा सेलें पूर्ण रूप से प्रवृत्त नहीं हो सकतीं।

(७) प्रत्येक आसन के पीछे शरीर को पूरा ढीला करते हुये विश्राम के लिये उचित समय देने की आवश्यकता है, इस कारण प्रत्येक आसन तथा उप-आसन को समाप्त करने

पर सहित-कुम्भक-प्राणायाम सहित शव-आसन करना अत्यावश्यक है।

(८) मुख, नेत्र तथा दांतों को आसन करते समय बन्द रखते हुये ध्यान आसन तथा प्राणायाम-क्रिया और उसके परिणाम पर होना चाहिये, जिस से शरीर की प्रत्येक गति तथा चेष्टा पर पूरा अधिकार तथा वश होने से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके, वृत्त-आसन में शरीर की तुलना करने के लिये नेत्र खुले रखने से सुगमता रहती है, और विपरीत करणी-मुद्रा (शीर्ष-आसन) में अवश्यमेव नेत्र बन्द रहने चाहियें।

(९) आसन को शीघ्रता से करने से पूरा २ लाभ नहीं हो सकता और किसी विशेष आसन में अधिक समय तक अन्तिम आकार में स्थित रहने से हानि होगी, आसन को धीरे २ करते हुये यथा शक्ति समय बढ़ता जाये किन्तु अन्तिम-आकार में ठहरने का समय बढ़ाना उचित नहीं, अन्तिम-अवस्था में कुछ क्षण ठहरना सर्वथा पर्याप्त होगा।

(१०) यह योग-आसन, स्त्री तथा पुरुष, दोनों के लिये ही उपयोगी हैं, बालक दस बारह वर्ष की आयु में इन को आरंभ कर सकते हैं, किन्तु थोड़ा २ करके, उन की पेशियों इत्यादि को अधिक तनने की आवश्यकता नहीं, शरीर की गतियां भी चाहे इनकी अवस्था में बहुत धीरे २ न हों, किन्तु एक समान हों, बालकों को दूसरी खेलों इत्यादि में भी भाग

लेने देना चाहिये उनकी प्रत्येक गति यथा संभव स्वाभाविक होनी चाहिये।

(११) इस पुस्तक में दिये हुये आसनों का अभ्यास आरम्भ करने से पहिले रोग-ग्रस्त मनुष्यों को चाहिये कि पत्र-व्यवहार द्वारा हमारी सम्मति ले लें।

(१२) आरम्भ-कर्ता को आरम्भ में किसी अनुभवी से शिक्षा प्राप्त करने से अधिक लाभ होगा, जो कि आगामि पृष्ठों में दी हुई आसन-पद्धति के अनुसार शिक्षा देने में निपुण हो।

(१३) आसनों को आरम्भ करने की चेष्टा करते हुये निम्न-लिखित पृष्ठों में दिये हुये आसन-क्रम की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

(१४) प्रत्येक आसन केवल एक ही बार करना उचित है, आरम्भ करता यदि किसी आसन को अभ्यास के लिये दूसरी बार करना चाहे तो विश्राम ( शव-आसन ) करने के पश्चात् किया जाये।

(१५) प्रत्येक आसन को धीरे से धीरे करने का यत्न करना अत्यन्त आवश्यक है।

## सामान्य स्वास्थ्य के विषय में

(१) रात्रि को शयन करने से पूर्व मूत्र-विसर्जन करके मुख, हाथ तथा पैर धोकर सोने से जहां स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, वहां निद्रा भी गहरी आती है, जिससे स्वप्न-दोष की कम संभावना होती है,

(२) पीठ व छाती पर सोना अथवा किसी भी अवस्था में लेट कर पढ़ना लिखना अत्यन्त हानिकारक है, दायें या बायें पक्ष पर सोना तथा बैठ कर लिखना पढ़ना ही उत्तम तथा लाभकारी है।

(३) वर्तमान कालीन दन्त-लेप (Tooth-paste) व ब्रश का प्रयोग दन्त-शोधन के लिये सर्वथा त्याज्य है, अत्यन्त सूक्ष्म पिसा हुआ सेंधव ( नमक )सरसों के तैल के, साथ थोड़ी सी मात्रा में मिला कर लेप (paste) तैय्यार करके दन्त-शोधन करना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा, साथ ही किकर, साश इत्यादि की ताज़ी दातन को चबाकर ब्रश बना कर उक्त तैल में भगो कर दान्तों का शोधन करके कण्ठ तथा जिह्वा को विधिपूर्वक शुद्ध करने से दान्त दृढ़ तथा रोग-रहित होंगे।

(४) मल-शोधन तथा मूत्र-विसर्जन करने के पश्चात् प्रत्येक बार गुदा तथा मूत्र-इन्द्रिय को बाहिर तथा भीतर से जल के साथ पूर्ण रीति से धोना उचित है, अर्थात् गुदा के भीतर अंगुलि डाल कर और मूत्र-इन्द्रिय के ऊपर के मांस को हटा कर जल से शुद्ध किया जाये।

---

# मल-शोधन के विषय में

## अश्विनी-मुद्रा

विधि—मल-विसर्जन करते समय दोनों जानुओं के बल पैरों पर बैठे हुये पूरक करके गुदा की पेशियों को अश्व अर्थात् घोड़े के समान बार २ भीतर तथा बाहिर गति देते हुये उतना समय श्वास को भीतर रखें, जितना समय लेश मात्र भी छाती पर दवाव वा कष्ट प्रतीत न हो।

नाम—इस क्रिया में मल-विसर्जन के समय घोड़े के समान गुदा की पेशियों को भीतर तथा बाहिर गति दी जाती है, इस कारण इस का नाम अश्विनी-मुद्रा है।

लाभ—इस क्रिया के करने से आन्तों तथा बड़े नल के मल का पूर्ण शोधन हो जाता है, गुदा तथा गुदा-द्वार में एकत्र हुआ २ व लगा हुआ मल बाहिर निकल आता है, उदर की कुपित-वायु ( Pois-cness gass ) भी बाहिर निकलने लगती है, कब्ज़ी का रोग भी निवृत्त होने लगता है।

———